सत्यसुकृत, आदि अदली, अजर, अचिन्त, पुरुष, मुनीन्द्र, करुणामय, कबीर, सुरति योग, संतायन, धनी, धर्मदास, चूरमणिनाम, सुदर्शन नाम, कुलपति नाम, प्रमोध, गुरुबालापुरी, केवल नाम, अमोल नाम, सुरतिसनेही नाम, हक्क नाम, पाकनाम, प्रकट नाम, धीरज नाम, उग्रनाम, दयानामकी दया, वंश ब्यालीसकी दया

अथ विवेकसागरप्रारंभः

★

प्रथमस्तरंगः

चौपाई

ज्ञान दीप बड़ जानु सुजाना। सुख न बहुत संतोष समाना॥
सत्य व्रत सम व्रत न कोई। ज्ञान समान गुरु नहिं होई॥
नहिं विचार ते औरू सारा। बिना विचार सकल संसारा॥
अगम ज्ञान न विचारे सारा। कैसे उतरे भवजल पारा॥
सोई विचार नाम लौ लावे। ज्ञान विचारि परमपद पावे॥
शेष सहस मुख निशिदिन गावे। बरनत वेद अन्त नहिं पावे॥

महा पुरुष को कहौं विचारा । तुम अनन्त गति लहै को पारा ॥
करम प्रधान जीव संचरई । तेहि को मिलै जहां मन धरई ॥
शीत उष्ण सुख दुख संसारा । आपुहि सृष्टि लीन्हते भारा ॥
यह सब सुपन देहको आही । प्रकृति भेद कछु लिप्त न जाई ॥
रविघन जैसे जीवहिं सांधे । माया ताहि सकै नहिं बांधे ॥
किमि मायाजिव ढकिसोइ लेई । भुलाई स्वरूप सुख दुखते देई ॥
कहूँ भेद सुनु सन्त सुजाना । कथा मोह विवेककर ब्याना ॥

प्रथम मोह राजा का वर्णन

मोह नृपति मायाते भयऊ । प्रबल घटा तिहुँ पुर सौ छयऊ ॥
बरनो तासु नाम गुण बैना । महा मोह राजाको सैना ॥

मोहकी स्थिति

निज अज्ञान देश रजधानी । आलस महल आशा पटरानी ॥
इच्छा बेटी खरी कठोरी । बांधे अनेक जीव वठि भोरी ॥
कुमति सखी ताके संग रहई । निति वठि हृदय सबनकी दहई ॥
लौंडी छूत टहल घर करई । जाके परसत सब जग डरई ॥
लौंडा लालच नाहिं अघावे । गरजत निलज सबके घर जावे ॥
रोग शोक संशय बहु भांती । पर द्रोही औ द्वन्द सँघाती ॥
ये राजा के पुत्र प्रचण्डा । जाके डर त्रासे नौ खण्डा ॥
पाप सबन को औगुन जानी । सुख दरिद्र मोह अभिमानी ॥
अधर्म ध्वजा जाके अगवानी । बाजा प्रकट कलह निशानी ॥
दम्भ छत्र चौतरा शूला । जहँ सिंहासन बैठे फूला ॥
कपट वजीर असत्य खवासा । पाखण्ड मन्त्री संग प्रकासा ॥

---

१ कथा । २ जिस प्रकारसे मेघ सूर्यको ढक लेता है किंतु उसका अनिष्ट नहीं कर सकता उसके स्वरूप का नाश नहीं कर सकता है उसी प्रकार से माया जीव का आच्छादन करती है किन्तु उसके स्वरूप में अदल बदल नहीं कर सकती ।

साखी–यह सेना सब मोहकी, कहै कबीर समझाय ॥
इतने जो को वाचई, भवसागर तरि जाय ॥

मोह के मुसाहिब–चौपाई

प्रथम उमराव दम्भ बखाने । ब्राह्मण छुए पर अवचन आने ॥
औरा बरनों उमराव जो आगे । तिनहू ते कोउ उबरे भागे ॥
काम क्रोध गर्व और लोभा । महा मोह बांधे संशोभा ॥
काम कमान गति कीन्हो दापू । अहं औ गर्व समाने आपू ॥
लोभ मिलै उपजै संतापू । चारिउ करे तिहूँ पुर दापू ॥
बरनूं एक एक की बाती । सुनि उघरी कायर की छाती ॥

कामप्रताप वर्णन

प्रथम काम धनुष कर लीन्हें । पांच बान सो तासंग चीन्हें ॥
मोहन वशीकरण उचाटा । बान लगत घर भूले बाटा ॥
दुष्ट काम उर प्रकटे आयी । ज्ञान विचार बिसरि सब जायी ॥
ऋतु वसंत त्रिय सैन सिंगारा । कहि न कामकी सेन अपारा ॥
सोलह शृंगार देखी मन मानी । निरखत अंग अंग की वानी ॥
ऐसी निरखि काल की सैना । सुर नर मुनि उर धरत न चैना ॥
साखी–यह काम अति प्रचण्ड है, होत उत्पन्न तिय अंग ॥
सैन चैन अतिही बढे, चढे काम रति रंग ॥
तन मन अस्थिर ना रहे, काम बान उर साल ॥
एक बाण से सब किये, सुर नर मुनी विहाल ॥

चौपाई

चलै काम यह सबै पलाने । महारुद्र की करत न काने ॥
महा रुद्र पहँ पहुँचे जानी । मारयो पुहुप बान शर तानी ॥
देखि मोहनी मोहे देवा । पुहुप बानको कुछ लह्यो न भेवा ॥
छांडि ध्यान धाये त्रिपुरारी । समुझे जबहीं जब परे जुहारी ॥

जान्यो काम क्रोध मन काछे । चितवत दृष्टि पाचो मति पाछे ॥
तब रति देखि दीन ह्वै गयऊ । विन्ती करत विषय तन भयऊ ॥
जब रति देखि दीन ह्वै आई । विन्ती करी तब लखि पाई ॥
सृष्टि न होय न चलै संसारा । महा रुद्र तुम करहु विचारा ॥
जब शिव देखि दया मन लावा । ता दुख मेटन मनमें आवा ॥
तब तिय जानि बहुरि निर्मयऊ । अंगहीन सो अति बलि भयऊ ॥
बहुरि काम ब्रह्मा पहँ आया । देखत नाहि कोप मन भाया ॥
षट पुत्रिन कहँ दीन्हों शापू । षट जन्म मृतवत्सा तुम हो आपू॥
बहुरि काम चले समुहाई । तेतिस क्रोड किये वशि जाई ॥
काम बान शर धरि लीन्हा । जीतन चले सो आपु वशि कीन्हा॥
इन्द्रसेन जब गयी सब हारी । इन्द्रहु की गई बुद्धि मति मारी॥
जबहीं इन्द्र काम वश भयऊ । गौतम नारि छलन तब गयऊ ॥
काम कोपि सुरपति पर आये । अति आतुर अहिल्या पहँ धाये॥
जबते चितमें चितये पापू । सहे उग्र गौतम को शापू ॥
सहस्र भग ताकहँ भयऊ । काम बान कर फल यह ठयऊ ॥
काम चन्द्र पर चितवे जबहीं । जाइ हरे गुरु-पत्नी तबहीं ॥

साखी—ऐसो असुर घटमों बसे, सुनहु हो धर्मदास ॥
घट परिचय जाने विना, सबका भया विनास ॥
तन मन लज्जा ना रहै, काम बाण उर साल ॥
एक काम सब वसि किये, सुर नर मुनी विहाल ॥

चौपाई

ऐसो असुर बरनो काही । जागे सोवत मारे चाही ॥
शृंगी ऋषी जो वन महँ जाये । कन्द मूल खनी वन फलखाये ॥
ऐसन ज्ञान ध्यान मन धरई । सोउ काम वसि फिरि फिरि परई॥
नारद आदि पंच शर तानी । और अनेक जेहि नर ज्ञानी ॥

काम बाण जब दशरथ लागे । राम छुटे तब प्राणै त्यागे ॥
काम बली अति बलवंडा । जासु बान रहे विकल ब्रह्मण्डा ॥
काम वशि भये रावण राऊ । हरण सीता किय नाश उपाऊ ॥
बड २ ज्ञानी जग महँ भयऊ । काम त्रास सबन कहँ दयऊ ॥
काम बाण ते बाचे सोई । शब्द विवेक जाके हि होई ॥
काम अति परबल सुनु धर्मदासा । सब कहँ दिये निरंजन फासा ॥

साखी-प्रेम प्रीती सो बांधिया, कहे कबीर समझाय ॥
ता प्रेम महँ विवेक विनु, रहे जीव मुरझाय ॥
सुर नर मुनि सब जीतिया, कोइ न उबरे धाम ॥
महा मोह शिर नायके, कियो उपायन काम ॥

क्रोध प्रताप वर्णन

चौपाई

काम धाम परि सब अकुलाते । अब निज सुनो क्रोधकी बाते ॥
काम ते अधिक क्रोध परचण्डा । जाके डर तरासै नौ खण्डा ॥
गुरु कुबुद्धि क्रोध के संगा । अढर भेष धरि चढत जो अंगा ॥
जब उर क्रोध परगटे आयी । कांपै देह थर थर हो जायी ॥
टेढी भौहैं अंकित नैना । अशुभ असार मुख बोलै बैना ॥
जरै हृदय मुख निकसे झारा । रोम रोम पावक पर जारा ॥
मार मार करै अपघाता । गिनैं न मातु पिता औ भ्राता ॥
दुई जाय कै विनशै आपा । दारुण हिया क्रोध कै रूपा ॥
प्रथमें क्रोध ब्रह्मा को भयऊ । षट पुत्रन कहँ शाप जो दयऊ ॥
ब्रह्म अहै सहे नहिं रूपा । उपज्यो क्रोध जो सबही भूपा ॥
सनकादिक बैकुण्ठे गयऊ । रोकत पौरी क्रोध मन भयऊ ॥
ब्रह्म पुत्र सह्यो नहिं छोहू । जय अरु विजय असुर दोइ होहू ॥
उपज्यो क्रोध सहे को भूपा । दरशन भये क्रोध के रूपा ॥

तजि द्वार देह धरो जाई। जन्म तीसरे मिलहो आई ॥
क्रोधते वे तीन जन्म विहाला। हरिनाकुश रावण शिशुपाला ॥
जब जब शिव क्रोध करै संसारा। परलय होत न लागे बारा ॥
जब सुर असुर क्रोध कियो रामा। भयो ताडका मारन संग्रामा ॥
दुरवासा क्रोध न सहेऊ। उलटी हानी तप में भयेऊ ॥
छप्पन कोटि यादव संघारा। आपुहिं आप क्रोध परजारा ॥
क्रोध किये सब कुल नाठी। सगर पुत्र जरे सहस्र साठी ॥
करि क्रोध भये जरि छारा। राजा रंक गनै को पारा ॥
कौरव पाण्डव क्रोधहि जारे। आपहि आप गये सब मारे ॥

साखी-दशो दिशा ते उठी, परबल क्रोधको आग ॥
संगति शीतल साधुकी, शरण उबरिये भाग ॥

चौपाई

कहै कबीर क्रोध पर हरै। सोइ प्राणी भवसागर तरै ॥
क्षण क्षण क्रोध हृदयमें आवै। जप तप ज्ञान रहै नहिं पावै ॥
पण्डित गुणि योगी वैरागी। ये सब जरैं क्रोध की आगी ॥
पंच अग्नि ग्रीषम ऋतु धरई। ऐसी विधि त्रिकाल तप करई ॥
पांचौ इन्द्री करै निरासा। साधे निद्रा भूख पियासा ॥
जतन जतन बहुत तप करहीं। क्रोध छुड़ाय छन एकमहँ हरहीं ॥
क्रोध ते रोग शोक संतापा। क्रोध फन्दा परि विनशे आपा ॥
क्रोधहि ते मूरख होय आवा। क्रोधै ते म्लेछ गति पावा ॥
क्रोधै ते नर नरके जायी। जोनिन संग कष्ट भरमायी ॥
सिद्ध काज विनासै क्रोधा। सब फल जाइ न पावै सोधा ॥

साखी-बहुत जतन तप कीनेऊ, सब फल क्रोध नसाय ॥
कहै कबीर धन संचै, चोर मूसि लै जाय ॥
कहै कबीर विचारिकै, क्रोध अग्नि बहु जाग ॥

संगति साधु सतनाम की, शरन उबरिये भाग ॥
क्रोध अग्नि घट घट बरी, जरत सकल संसार ॥
दीन लीन निज भक्ति सो, ताकर निकट उबार ॥

लोभ प्रताप वर्णन

चौपाई

वरण्यो काम क्रोध मन जाथा । अब सुनु निलज लोभकी गाथा ॥
बुरा लोभते और न कोई । सकल अधर्म लोभ ते होई ॥
हाथ लकुटी नट कपिहिं नचावै । यहि विधि सकल जीव भरमावै ॥
पुनि ते मायाही मन लावै । अगम निगम दशहूँ दिशि धावै ॥
अंकिप आनिके जोरै दामा । तन मन देइ करै जम जामा ॥
खोवै बुद्धि करै जंजाला । समुझै नहीं मृत्यु औ काला ॥
आपदा होय नहीं विश्रामा । कहौ अगनित जो डूबे दामा ॥
जब मन लागे द्रव्य के संगा । जागत सोवत सुख नहिं अंगा ॥
पल एक में गुरु ज्ञान बतावे । जब शिष चोर द्रव्य पर लावे ॥
ऐसी वस्तु गुरू मोहिं देहैं । जेहि प्रकार मोरे धन होइहैं ॥
ऐसी आश लगावे चेला । अपने दाव करे भक्ति दुहेला ॥
लोभ विवश गुरू भक्ति करई । मनमें लोभ मुख भगती धरई ॥
गुरू महिमा कर माल चढावे । परफुल्लित होय भक्ति मुख गावे ॥
मनमें लावे कछु औरे । ठाठ बाट देखि सो दौरे ॥

साखी—गुरू लोभी शिष लालची, दोनों खेलें दाव ॥
दोऊ बूडे बापुरे, चढि पाथरके नाव ॥

चौपाई

कलियुग वैराग अस होवे भाई । सुनु धर्मदास मैं कहौं बुझाई ॥
कलियुग पाप कर्म बहु बढिहैं । करि करि पाप दुख में पडिहैं ॥
ताते दरिद्र होय बहु लोगू । सहिहैं बहुते दुखरू सोगू ॥

पाइ दुख बहु भेषसों धरिहैं । लागे लोभ पाप बहु करिहैं ॥
मांगि मांगि कछु द्रव्य कमायी । ऋण व्याज दर दिहैं उठायी ॥
नाम साधु जग मांहि कहायी । खैहैं व्याज करि कर्म कसायी ॥
मठ मन्दिर कारण धन लैहैं । सेवक साख बहुत बढैहैं ॥
साधू सेवा सबहि बतायी । नाम परमारथ करहिं ठगायी ॥
पाइ द्रव्य विषय सो भोगी हैं । बहु विधि इंद्रिन सुख लगि हैं ॥
विषय भोग को द्रव्य सो चाही । तब पडि हैं वह तृष्णा मांही ॥
तृष्णा अति परबल जग भंगी । सदा रहै वह लोभ की संगी ॥
अर्द्धांगिनी लोभ की कहिये । अब ताकर वृत्तांत सो लहिये ॥

साखी-जब मन लागे लोभ सो, गया विषमें विष बोइ ॥
कहै कबीर विचारि के, यही प्रकार धन होइ ॥

चौपाई

पहिले पैसा मों मन लावे । पैसा मिले टकाको धावे ॥
टका देखि मन मैं सुख भयऊ । दो टका का उद्यम कियऊ ॥
दुइ जोरे जोरे फिर चारी । लोभ पाति दीन्हों परचारी ॥
चारि जोरि मन उपज्यो रंगू । अब दश कै जोर होय जनि भंगू ॥
दश जुरै मन रहे न ठोरा । जोरि बीस मन आगे दौरा ॥
बीस जोरि मन बाढी आशा । अब जो कैसेहु के जुरे पचासा ॥
जोर पचास गांठ सौ दीन्हा । तब सहस्र को उद्यम कीन्हा ॥
जोरि सहस्र तृष्णा नहिं साखू । अब लागै जोरन लाखू ॥
लाख जोरि विनवै कर जोरी । अब परमेश्वर मोहि देहि करोरी ॥
जोरि करोर क्षण कल नहिं परै । लौन अगिन छिन छिन तनु जरै ॥
ज्यों ज्यों लोभ मिलै नौखण्डा । त्यों त्यों लोभ भयो परचण्डा ॥
ज्यों ज्यों तरुण बालपन गयऊ । त्यों त्यों तरुण लोभ अतिभयऊ ॥
धनकूं धाय धायके धरई । ज्यों पतंग दीपक में परई ॥
धनकूं धाय आन कूं लागे । होय जरा त्यों त्यों धन मांगे ॥

साखी-धावै औगुन धनहि को, लालच बान चढाइ ॥
कहै कबीर विचारि के, गुण शील सब जाइ ॥
जहां लोभ गुण औगुन है, तहां नहिं शील स्वभाव ॥
लोभ औगुन ते वाचनो, गुरु विनु कहै को दाव ॥

चौपाई

लोभ अग्नि लागे नहिं जागे । सब गुन आहि तौ काहे लागे ॥
सरब अरथ कहीं दिखलावै । सूर सारंग जो गाइ सुनावै ॥
चारि वेद व्याकरण समाना । और अष्टादश पढहिं पुराना ॥
जंत्र मंत्र जानत अति नीके । सब गुन अहित लोभके पीके ॥
करि तपस्या वह देह जरावे । उलटा लटकि बहु सिद्ध कहावे ॥
औरन को परमोध बहु करई । त्याग दृढावत जहँ तहँ फिरई ॥
और नहिं छुडावे परिवारा । मंडली बढावन मनमें धारा ॥
करि परिश्रम बहु धन जोरई । खरचे न खाय फिर पिनता धरई ॥
यह सब काम लोभ का भाई । विन सतगुरु नहिं लोभ छुटाई ॥

साखी-भेष भक्त मुदित सबे, ज्ञानी गुनी अपार ॥
षट दर्शन फीके परे, एक लोभके लार ॥
भगत मुडिया जटाधारी, ज्ञानी गुनी अपार ॥
षट दर्शन भटकत फिरे, एक लोभ की लार ॥

अथ गर्वका कर्तृत्व वर्णन

चौपाई

जाते दारुण दुख सुख भाऊ । बढ्यो अपरबल लोभ उमराऊ ॥
निर्लज लोभकी कथा बखानी । सुनहु जीव गति गर्व अभिमानी ॥
छिन छिन गर्व हिया में आवे । आगे कुटिल सबही दिखलावे ॥
ऐंडत चलै निहारत पागा । गर्व खबीस तबहिं उठि लागा ॥

ऐंठ अकड अभिमानी माहीं । अभिमानी नीचा हों नाहीं ॥
मूछे ताव निहारत छाँहीं । काँधे धरे अवरकी बाँहीं ॥
टेढी पाग गर्व मन धरई । मन महँ ऊमतवालो फिरई ॥
अनीति वचन औरन सों बकै । हमरी बरोबरी को करि सकै ॥
हम कुल बडे बडन के जाये । हमरी आदि साख चलि आये ॥
नाती पूत हमारे चाही । कुटुम्ब बहुत हमारे आही ॥
घर मडवा अँगनाह हमारे । फूले फिरे गर्व के मारे ॥
झूठ कपट अभिमानी खेलै । कंचन बर्तन माटी मेलै ॥

साखी—छर्ब गर्ब अति सर्व सुख, विषय विकार न मूल ॥
कहै कबीर काल शिर पर, लिये हाथ त्रिशूल ॥

अति के गर्व न होय भाई । गर्वहि ते पुनि सर्व नशायी ॥
अभिमानी नहिं छूटे कबहूँ । बहु विचक्षण ज्ञानी होय तबहूँ ॥
भगली दम्भ नितही मन माहीं । निकट सांच कछु आवे नाहीं ॥
हम हम हम करत सो डोलै । काहू ते सीधा नहिं बोलै ॥
रूपवन्त रूप गरवावे । कोई मोसम दृष्टि न आवे ॥
तरुणापा तरुण पछारा । अन्ध बनाइ गर्व तेहि मारा ॥
धन कुल विद्या गर्बाना । धनो ऊंच ज्ञानो विखराना ॥
अहै भूप राजा अभिमानी । आपेही को सरवस जानी ॥
है योगी योग गर्व धारै । बडे बडे सिद्धि काल गहि मारै ॥
है भेसी टेक मन धरई । विचार विवेक दूर सो करई ॥
कहै पुकार धरी अभिमाना । मेरा नीका सुन यह ताना ॥
मेरे फन्द जो आवै कोई । परसत मोहि नरकमहँ सोई ॥

१धनाभिमानी अपनेको सबसे अधिक धनी जानता है।
जात्यभिमानी अपनी जातिको सबसे ऊँची मानता है।
विद्याभिमानी अपनेको सबसे अधिक ज्ञानी अनुमानता है।

साखी—सर्व परद्वारी नाशके, तुरतहि देइ सजाइ ॥
ताकर दर्श न पाइ नर, तुरतहिं नरके जाइ ॥

इति श्रीविवेकसागरे मोहदलपरीक्षावर्णनो नाम प्रथमस्तरंगः ।

अथ द्वितीयस्तरंगः

विवेक दल वर्णन

अब सुनु विवेकराय की गाथा । पर सुखदाई जाकर साथा ॥

विवेक स्तुति

आदि अंत लोक के राई । तुमरी गति कछु वरनि न जाई ॥
सब विस्तार तुमहीं विस्तारे । सत रज तम तीनो गुण धारे ॥
ऐसे परम पुरुष के अंशू । प्रकटें प्रेम विवेक सुख वंशू ॥

विवेककी स्थिति

निरमल साधु उर निजपुरगाना । तिलक ध्वजा माल औ बाना ॥
ज्ञान देश प्रकाश रजधानी । आनन्द रूपी विवेक परवानी ॥

विवेककी सेना

सुनहु विवेक राज की सैना । जाके राज सकल सुख चैना ॥
उमरा धीरज धर्म औ ज्ञाना । प्रेम भक्ति बाजै निश्शाना ॥
निजानन्द महल पग धरई । श्रद्धा रानी सेवा करई ॥
निर्भय संत सुशील सुभाऊ । ये विवेकके पुत्र कहाऊ ॥
ऐसे नृप विवेक के अंशू । प्रगटे आद प्रेम सुख वंशू ॥
नृप विवेक की बेटी चारी । सत्य दया क्षमा शुभकारी ॥

१-इस पुस्तकको जितनी प्रतियाँ इस समय मेरे सन्मुख उपस्थित हैं उन सबों में सारद और सरधा इन दो प्रकारसे लिखे हैं ।

२-लिखते तो हैं बेटी चार किन्तु आगे नाम देते हैं दया और क्षमा दो ही का यह मूल पुस्तक रचयिताकी भूल तो कही नहीं सकते क्योंकि जो इस प्रकारकी उत्तम पुस्तक लिखने की अभिलाषा रखता होगा उसके पास सामग्री भी होगी किन्तु लेखक महाशयों की कृपा का फल है ।

सत्य संतोष साथ है ताही । नरक परत गहि राखत वाही ॥
लौंडी सुबुद्धि सबनकी लाजा । लौ लौंडा पुरवे सब काजा ॥
सुचित शील और अनुरागी । क्षमा स्वभाव बैठे वैरागी ॥
रहनी क्षत्र चौतरा सुभाऊ । सहज सिंहासन बैठे राऊ ॥
व्रत वजीर और सत्य खवासू । मन्त्री निरभै संग प्रकासू ॥
करहिं वेद ताके सुख सेवा । विवेक प्रसाद सदा सुखदेवा ॥
धीरज ज्ञान धर्म उमराऊ । ये राजाकी करहिं सहाऊ ॥
उग्रज्ञान प्रकटे जब आयी । ताक्षण मोह सबै मिटि जायी ॥
ज्ञानवन्त जब प्रकट है आवै । काल जंजाल सबै मिटि जावै ॥
चौकी मोह सबै उठि भागे । भागे कपट ज्ञानके जागे ॥
दुष्ट काल पल लागत गयऊ । ज्ञान चक्षु हिरदय तब भयऊ ॥
कोहौं अहऊं कहँ ते आयो । जैहौं कहाँ काहि मन लायो ॥
कहौं को तुम को संसारा । काहे बंध्यो सो करो विचारा ॥
झूठे मोह बँधो संसारा । कहे बंध्यो सो करो विचारा ॥
जैहौ कुगतिलोभ संचारा । झूठे मोह बन्धो संचारा ॥
दंपति सुख संपति परिवारा । ये सब माया को विस्तारा ॥
जैसे छिन बदरीकी छाया । ऐसे गहे देत सुख माया ॥
ये सब सुख सपने को राजू । जागि परे कुछ सरे न काजू ॥
झूठे आहि देहको नातो । ये सब माया केर समातो ॥
तन जारे भसम होय जाई । मेहरी मातु नातु नहि काई ॥
ऐसो ज्ञान मन प्रगटे आयी । तो कहु मोह कहाँ ठहरायी ॥
ज्ञान मोह दल देखी दाही । कदली गर्व विचाला चाही ॥

साखी-प्रगटे प्रेम विवेक दल, कहे कबीर समझाइ ॥
उग्रज्ञान अति बली, जेहि सुनि मोह डराइ ॥

नाम हेतु जो कीजे कर्मा । कहै कबीर सोई निज धर्मा ॥
सांचो धर्म जानिये सोई । प्रगट स्नेह नाम सो होई ॥
तन मन धन जो नामे देहैं । सोई भक्त कबीर कहै हैं ॥
अग्नि जायके शिर धरयी । तौहु न नाम महिमाते परयी ॥
कोटिक सुख कोटिन दुख पावें । धीरजवंत नाम लौ लावें ॥

विवेक और मोहकी छोड छाड

ऐसो ज्ञान प्रगट जब भयऊ । चिंता मोह सबै मिटि गयऊ ॥
उपज्यो काम क्रोध मोह दापू । निज धीरजके विश भय आपू ॥
लोभ मोहकी अग्नि अतिदहई । सन्तोष पोष प्रवृत्त होय रहई ॥
धीरज धर्म ज्ञान मन दियऊ । तबहीं मोह चकित होय रहऊ ॥

विवेक और मोहयुद्ध वर्णन

तबहि मोह मन्त्र उपजावा । पाखण्ड मित्र निकट बुलावा ॥
सकल सैन को बुलवायऊ । मित्र एक जोडि ठहरायऊ ॥
आये प्रबल विवेक नरेशा । लीन्हें आइ हमारो देशा ॥
अब मति मन्त्र करो ठहरायी । देश आपनो लेहु छुड़ायी ॥
कहै पाखण्ड सुनो मम राजा । यह बड कौन अहै सो काजा ॥
राजा मन्त्र हमारो लीजै । प्रथम कामको आयसु दीजै ॥
आगे आगे काम रह भरपूरी । ज्ञान विवेक जाहि सब दूरी ॥
तबहिं काम कहँ आयसु दियऊ । दल बादल सह रन सो गयऊ ॥

काम और ज्ञानयुद्ध

काम कुपित वचन सुनायो । हमरे देश ज्ञान कहँ आयो ॥
उतै भयो काम उतै भयो ज्ञाना । मानस भूमि रच्यो संग्रामा ॥
यहै कबीर यहै परमाना । काम ज्ञान युद्ध तब ठाना ॥
बहु रूप धरि काम तिवाना । तबही चलावै पांचो बाना ॥
निरफल कियो ताहि तब ज्ञाना । सुरति शब्द लै रहे निदाना ॥

काम कहै यह नीकि सुन्दरी । कहै ज्ञान यह विष की दहरी ॥
काम कहै याके ढिग जाई । ज्ञान कहै यह सांपिन अहई ॥
काम कहै कामिनि सम तूला । ज्ञान कहै यह विष कर मूला ॥
कामासक्त कुदृष्टिसन राता । ज्ञानसक्ति करि बोलै माता ॥
यह सुनि बहुत अजब भौ कामा । सह्यो ज्ञान हमरो संग्रामा ॥

साखी-रच्यो कामछंद अनंगरती, त्रिविधि मद त्रियासंग ॥
कहै कबीर यह अति बढै, जब बढैं काम रतिरंग ॥

चौपाई

शब्द विचारै बोलै ज्ञाना । जीत्यो तोहि विवेककी आना ॥
तबही विचारै ज्ञान सो कीया । बाका भेद सबै सो लीया ॥
ज्ञान विचार उठे गल गाजी । काम निलज्ज न काहे भाजी ॥
धिगतिया धिग धिग अस राजा । निरधिनरुधिरमांस को साजा ॥
हाड त्वचा मुख रोम पसारा । नव द्वार बहैं अति खारा ॥
रेंट नाक मख कफ लारा । कीचड आंखिन काने छारा ॥
नख शिख व्याधि सबै विस्तारा । विष्ठा मूत्र तिया तन भारा ॥
वाहि रांचैं सो पावैं दुक्खू । सपने नहिं तेहि होये सुक्खू ॥
दुख की राशि जो राजी कोई । साचो नर्क आहि पुनि सोई ॥
यह कहि ज्ञान रहा ठहराई । काम सैन डारै विचलाई ॥
विचल्यो काम गयो खिसियाई । उग्र ज्ञानते कछु न बसाई ॥

साखी-प्रेम भक्ति बल ज्ञानते, रूप रह्यो रन पाय ॥
मोहि काम का करि हैं, जो साहब होइ सहाय ॥

चौपाई

विचल्यो काम मोह पहँ गयऊ । सबहि वृत्तान्त सुनावन लयऊ ॥
मनमें मोह बहुत पछितायी । बोलाइ क्रोधको बात सुनायी ॥
आइ क्रोध जब ठाढे रहेऊ । तबही मोह क्रोधसे कहेऊ ॥

तामस तेज नाम तोहि क्रुद्धा । करु विवेक ज्ञानसो युद्धा ॥
कहँ अस प्रबल तोहि को सहै । तोरे तेज ज्ञान कहँ रहै ॥
वह सुनि क्रोध चला समुहाई । करी गवन पहुँचा रन आई ॥
तनमें आइ कियो परवेशा । छांडो ज्ञान हमारो देशा ॥
जो तुम निश्चय जीतो कामा । तो अब मोसों करो संग्रामा ॥
यहसुनिज्ञान अचम्भित भयऊ । जाइ विवेक राइ सों कहेऊ ॥
राजा तब यक मंत्र विचार्‍यो । जेहिविधि प्रबलक्रोधको मार्‍यो ॥

साखी–यह अति क्रोध प्रचण्ड है, कोपि करै भयमंत ॥
सुधि बुधि धीरज ना रहै, जब यह कोपि चढंत ॥

चौपाई

तब राजा मंत्रिन सो कहै । प्रबल क्रोध क्यहि कारण दहै ॥
तब सबहि मिलि मंत्र विचारा । यह तो जाय क्षमा ते मारा ॥
बोलि विवेक क्षमा सो कहै । तुम तो जाइ क्रोध रन बहै ॥
भक्ति ज्ञान तेहि देइ सहाई । प्रबल क्रोधको मारो जाई ॥
यहिसुनि क्षमा रोपे रन आयी । लीन्हो शीलजो धनुष चढायी ॥

क्रोध और क्षमा का युद्ध

देखि क्षमा क्रोध चले धायी । मनसा भूमि रोप्यो रन आयी ॥
सुनो क्षमा क्रोध संग्रामा । लरही दोउ जुझै संग्रामा ॥
उतते क्रोध उठे रन कोपी । इतते क्षमा रहै रण रोपी ॥
मारन क्रोध उठे जब धायी । इतते क्षमा दीन्ह मुसकायी ॥
क्रोध आन तब गारी दयी । सुनि क्षमा अन बोली भयी ॥
मीठे वचन क्षमा अति बोलै । कोपै क्रोध पवन ज्यों डोलै ॥
क्षमा से अग्नि शितल ह्वै जाई । जैसे जलमें अग्नि बुझाई ॥
यहि विधि क्रोध क्षमा सो भिरई । मानहु अँगार पानिमहँ परई ॥

साखी–भलो भलो सब कोई कहै, रहि गइ क्षमा दुहाइ ॥
कहैं कबीर शीतल भये, गयी सो अग्नि बुझाइ ॥

चौपाई

क्रोध जरनते गयऊ बुझायी । राजा मोह समाचार तब पायी ॥
बहुते मन महँ कीन्ह पछिताई । सकल सैन को लिये बुलाई ॥
हारयो क्रोध काम जब जाना । महा मोह राजा डर माना ॥
चकित मोह मन्त्री हँकरावा । सम्मुख मोह विवेक डरावा ॥
लोभ मन्त्री आय भये ठाढा । देखत राव छोभ अति बाढा ॥
तब लोभ मोहहि माथ नवाई । कहु राजा मोहि काहे बुलाई ॥
जबलगि अहै मोह रणधीरा । तब लग काहे होहु अधीरा ॥
जबलग प्रबल मोह है आगे । तब लग कहा ज्ञान कह जागे ॥
महा मोह राजा सुनु बैना । जबलगि हौं तबलगि सब सैना ॥
जबलगिहौं तब लगि आही । मोरे गये सबै मिटि जाही ॥
हौं निज सर्व पापका मूला । मोरे ते तुम रहत हो फूला ॥
जीतौं ज्ञान विवेक हि जायी । देश आपनो लेउ छुडायी ॥
तो कहँ फिर मैं देहौं राजू । महामोह मोरे बल गाजू ॥
यह सुनि हर्ष मोह मन भयऊ । तत्क्षण लोभको आयसु दयऊ ॥
मोह कहै देहौं सब राजू । तबहीं लोभ रणै महँ गाजू ॥
जबही मोह लोभहि कहेऊ । देई बीरा आयसु दयऊ ॥
बाचा बन्ध राजा जब भयऊ । तबहीं लोभ रण कहँ गयऊ ॥
जाई रण दियो लोभ हँकारा । ज्ञान तुम का करहु तकरारा ॥
हम बन्दोबस्त कियो परवेशा । छोडहु ज्ञान हमारो देशा ॥
तजहु ज्ञान तुम हमरो ठाऊं । मैं प्रचण्ड लोभ मोर नाऊं ॥
अब मैं रनमहँ अग्नि परजारौं । करि बल एक एक कै मारौं ॥
चिन्ता शक्ति पापको मूला । कोउ न जानै मम डर भूला ॥
आशा तृष्णा तहां अति बहै । सुनत ज्ञान तहां नहिं रहै ॥
नहिं जानो तुम क्रोध औ कामा । हौं अति प्रबल लोभ मोहि नामा ॥

छांडहु ज्ञान हमारो ठाऊं । नहिं तो तोहि धरि धरि खाऊं ॥
यह सुनि ज्ञान मन्त्र यक ठयऊ। फिर विवेक राजा पहँ गयऊ ॥
राजा मन्त्र करो ठहराई । लोभ न मोपै जीतो जायी ॥
जो तुम लोभ जीतौ आजू । तौ तुम करो निकंटक राजू ॥
तब बोले मन्त्री प्रकाशा । यहि बिधि होई लोभको नाशा ॥
राजा मन्त्र कियो मन चाही । पुत्र तुम्हारो जीते याही ॥
सो सन्तोष कुवरकर नामा । सो निश्चय जीते संग्रामा ॥
तब राजा बोले सन्तोखा । लोभै जीतौ मिटै सब धोखा ॥
भक्ति ज्ञान तोहि देहुँ सहाई । प्रबल लोभ कहँ जीतहु जाई ॥

लोभ और सन्तोषका युद्ध

इत भौ लोभ उत भौ सन्तोषा। मनसा भूमि उठ्यो रन रोषा ॥
लालच बाण लोभ संचारा । क्षमा बाण सन्तोष तेहि मारा ॥
लोभ चलावै धनुष कहँ खैंची । सन्तोष लीन्ह सुमिरनकी ऐंची ॥
चिंता शक्ति लोभ पठायी । ज्ञान शक्तिसो निष्फल जायी ॥
अतिदुखफांसीलोभ कर लयऊ। उग्र ज्ञान सन्तोष मिटैऊ ॥
परम सन्ताप लोभ कर लयऊ। सोदया खड्ग ते निष्फलगयऊ॥
अचेत शक्ति लोभ चलाई । जागृत शक्ति सन्तोष पठाई ॥
लोभ कहै पैसा तुम लहिये । सन्तोष कहै कछु नहिं चहिये ॥
लोभ कहै नीको है रूपा । सन्तोष कहै छाडि गय भूपा ॥
लोभ कहै लेव कंचन मोरा । सन्तोष कहै जीवन है थोरा ॥
लोभ कहै घोडा जोडा नीका। सन्तोष कहै कारज नहिं जीका ॥
लोभ कहै हीरा ल्यो लालू । सन्तोष कहै संग नहीं चालू ॥
सांच धनुष कर गहि धयऊ । चपल लोभ चापि दल गयऊ ॥
उदासी शक्ति उरमें उपजायी । कंप्यो लोभ ज्यों विष खायी ॥
धीरज खड्ग गह्यो सन्तोखा ।बिचल्यो लोभ मिट्यो सब धोखा॥

साखी-काम क्रोध विचले, विचले लोभ अकाज ॥
महामोह मनमहँ झखे, गयो हमारो राज ॥
काम क्रोध दोऊ गये, गये लोभ दल भाज ॥
दया क्षमा सन्तोष बल, रहै विवेक सो गाज ॥

चौपाई

मोह बुलायि गर्ब सन कहेऊ । बिचलो सबै एक तुम रहेऊ ॥
अब मेरो तुम करो सहाऊ । मोरे संग गर्व चढि धाऊ ॥
ज्ञान विवेकको मारि भगावें । जप तप साधन मारि सब लावें ॥
बोले गर्व मोह ते तबहीं । का बिसात विवेक की अहहीं ॥
मेरो हँकार फिरे जेहि देशा । रहै न ज्ञान बिचारको लेशा ॥
बाकी सैन रहे सब जोहीं । लीन्ह बुलाय मोह तब ओहीं ॥
लीन्ह सजाय सैन बहु रंगी । मोह गर्व चढे एकसंगी ॥
मोह दल जब पहुँचे रणमाहीं । खबर भयो विवेक पहँ ताहीं ॥
सज्यो सेन तब बहु समुदाई । होय निशंक चले रण भाई ॥
उतते मोह रण रंग मचावा । इत विवेक राजा चढि आवा ॥

साखी-दोउ दल चढि ठाढे भये, मनमें भये निचिंत ॥
कहे कबीर बिचारिकै, डरे मोह मदमन्द ॥

चौपाई

देख्यो गर्ब मोह सकाना । करी क्रोध बाण संधाना ॥
बहु बडाइ सो बोलन लाग्यो । ज्ञान विवेक कहाँ अब भाग्यो ॥
आवे सन्मुख मोसे सब काहू । सुनत वचन मोह उत्साहू ॥
बेसुध बाण गर्ब तब धारा । उतते चैतन बाण सम्भारा ॥
बल करि गर्ब उठे समुदाई । तबहिं खवास गयो ठहराई ॥
उमज्ञान राजा पहँ गयऊ । गर्व गँवार दृढ अति भयऊ ॥
राजा मोकहँ आयसु देहू । कौन बाण ते मारौ एहू ॥

दीन तब बाण राजा कर लयऊ । हित के उग्र ज्ञान कहि दयऊ ॥
मारयो ज्ञान दीन तेहि बाना । हारयो गर्व लाग्यो बिरहाना ॥
हारयो गर्व राजा जब जाना । तब निज गयो अपनपो माना ॥

साखी–गर्व मुये विकल होई, चले आप रणमांहि ॥
मनही मन पछतावई, मोर कुशल अब नाहिं ॥

चौपाई

सुन्यो मोह चल्यो गलगाजी । जीतन विवेक चला दल साजी ॥
पहुँची रण अस बोलै मोहा । कहां विवेक आऊ मम सोहा ॥
महा मोह राय मम नामा । सहो ज्ञान मोरो संग्रामा ॥
सबैं उमराव गयो हरायी । अब नहिं होई तोर कुशलाई ॥
मैं बाण चलाओं जबहीं । क्षणमहँ होइ नाश तुम तबहीं ॥
कहै विवेक बड़का हाको । करो लडाई नाशहि ताको ॥
सुनत मोह क्रोध तब कीन्हा । धनुष उठाय कर गहि लीन्हा ॥
ममता बाण तबहीं ताना । विचित्र बाण विवेक संधाना ॥
आलस शक्ति मोह उपजाई । चैतन शक्ति विवेक चलाई ॥
भ्रमण चक्र मोह गहि डारा । चैतन चक्र विवेक पसारा ॥
अनर्थ खड्ग मोह लियऊ । अर्थ खड्ग ते निरफल गयऊ ॥
निद्रा शक्ति मोह संचारी । जाग्रत शक्ति विवेक तहँ मारी ॥
मोहफांस माया विस्तारी । विवेक विचार छिनक महँ टारी ॥
उपजायो तब मोह अंधेरा । हँसै विवेक यहै बल तेरा ॥
प्रकाश बाण विवेक चलयऊ । ततक्षन अंधकार मिटि गयऊ ॥
सत्यबाण विवेक संचारा । असत खवास मोह कहँ मारा ॥
ज्ञान बाण विवेक जब छाडा । मूर्छित मोह महारथ पाडा ॥
करि विवेक मोह तज दीठी । बिचल्यो मोह हृदय गौ पीठी ॥
बिचल्यो मोह दशहू दिशि गयऊ । सुपंथ सकल द्वन्द मिटि गयऊ ॥

साखी-कहै कबीर विवेक दल, अटल ज्ञान दल गाज ॥
अब तो निर्मल होगये, गये मोह दल भाज ॥

सुनहु धर्मनि सत्य विचारा। विना विवेक नहिं उतरे पारा ॥
विना विवेक काल धर खाई। धरि धरि मारे काल कसाई ॥
काल दूत जग फिरे फिरावै। मोह सैन की वृद्धि करावै ॥
जेत महातम जग महँ होई। काल फन्द जानहु सब सोई ॥
विवेक ही न जीव जग जेते। सुनि सुनि धाय धाय तेहि लेते ॥
विना विवेक पारख नहिं पावै। झूठी आश लगी सो धावै ॥
विना विवेकन न चीन्हे सोई। काल दयाल दोऊ कस होई ॥
विना विवेक काल गुण गावैं। बार बार भौ चक्कर जावैं ॥
सतगुरु उपदेश जब देही। काल जाल छुडावन लेही ॥
विवेक सागर जो सुनै सुनावै। करै विचार परम पद पावै ॥
निर्मल बुधि अटल गुण गावै। सो हंसा भवजल नहिं आवै ॥
मोह विवेक लडाई भाख्यो। छुडावन मोह पक्ष नहिं राख्यो॥

साखी-यह विवेक सागरकथा, करे श्रवण मन लाइ ॥
अद्भुत ज्ञान प्रकाश तेहि, जियत मोक्ष फल पाइ ॥
कहै कबीर धर्मदाससों निर्मल ज्ञान विवेक ॥
जाहि सुने सुख ऊपजे, संशय रहै न नेक ॥

इति श्रीविवेकसागर समाप्त

सत्यनाम

अथ हंसमुक्तावली

अन्तर्गत

मोह और विवेककी कथा सटीक

*

धर्मदास वचन

धरमदास विनयकरि गुरुपदपंकज गहे ॥
हो प्रभु होहु दयालु दासचित अतिहि दहे ॥
मन स्थिर नहिं राजत पल प्रति संधना ॥
कैसे मन थिर होय कहो जग वन्दना ॥

टीका–एक समयके विषय जब कबीर साहब और गुरु धर्मदास साहब दोनोंही प्रसन्नचित्त सत्संगमें मगन थे उस समय मनके प्रसंग पडने पर कबीर साहबने कहा कि मनको स्थिर कर गुरुकी वाणी में लौ लगाकर पारख करनेसे सत्य पद की प्राप्ति होती है।

इतने वचनको सुनकर गुरु धर्मदासजीने सतगुरुके चरणको पकड़कर बहुत अधीनतासे विनय किया कि, हे भगवन्! हे प्रभु! मुझ दासका चित्त सदाही चिन्ता से दहन हुआ करता है। चित्त किस लिये दहन होता है इस प्रश्न के उपस्थित होनेपर कहते हैं कि. हे प्रभु! आपने कहा कि, मनको स्थिर कर गुरुके शब्दमें लौ लगा, सो मन तो पलमात्र भी स्थिर नहीं होता है, यह मन जिस प्रकारसे स्थिर होकर आपके चरणकमलोंमें लग जावे सो मुझसे कहिये। हे प्रभो! आप समस्त जगत्के पूज्य और वन्दनीय हो, आप के विना मेरे चित्तका दुःख कोई भी छुडानेको समर्थ नहीं है।

गुरु धर्मदासजीके ऐसे विनय पूर्वक जिज्ञासाको सुनकर सद्गुरु कबीर साहब कहने लगे कि,

सद्गुरुकबीर वचन

सुनो धर्मदास यह भेद बूझे बनिआवई ॥
सद्गुरु कहै समतूल थिते जब पावई ॥

टीका—हे धर्मदास ! यह मन स्थिर करनेकी युक्ति जो तुमने पूछी सो बूझनेसेही बन आती है, किन्तु मनुष्यको इसकी समझ कब पडती है जब कि, एक तो सदगुरुभी पूर्णरीतिसे स्पष्ट समझाने वाला हो और दूसरे शिष्य अधिकारी हो। समझनेकी योग्यता के साथ २ गुरु में सच्ची श्रद्धा रखनेवाला हो। ऐसे गुरु शिष्य जब एकत्र होवें तब शिष्यको थिरता मिलती है और मन भी शान्त होता है।

यहां तो दोनों सत्य कबीर जैसे गुरु और धर्मदासजी जैसे शिष्य हैं इस कारणसे सद्गुरुने सैनसे यह दिखाया कि यहाँ पर सब सामग्री यथास्थितिइकट्ठी हैं। इसी कारणसे सद्गुरुने विशेषकर न कहकर मनविरोधका मार्ग (राजयोग) कहना आरम्भ किया।

मन राजा अति दारुण तेहि दोय अंगना ॥
एक कहेउ प्रवृति अतिहिं तेहि रंगना ॥

टीका—सद्गुरु कबीर साहब कहते हैं हे धर्मदास! यह मन इस शरीररूपी नगरका राजा है राजा भी ऐसा वैसा नहीं बहुत दारुण अर्थात् भीषम अर्थात् भयंकर है। तहां श्री अनाथदास-जीकृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकमें मनकी उत्पत्ती इस प्रकार लिखी हैं।

दोहा-निर्विकल्प व्यापक सकल, साखी सर्व असंग ॥
सर्वरूप सबते परे, सबविधि जान अभंग ॥
आदि पुरुष सर्वज्ञ अज, पूरण रूप अनन्त ॥
यही भांति हरि नित्त हैं, नेति वेद गावन्त ॥
त्रिगुण नियन्ता ईश जो, सत चित सदा निवृत्त ॥
ताकी इच्छा मात्रही, बल पायो प्राकृत्त ॥
प्रकृति पुरुष संयोगते, प्रगट भयो मन भूप ॥
संकल्प विकल्प दोऊ उठे तेमन शक्ति अनूप ॥
मन माया विस्मृति कियो, नाम विचित्रा तासु ॥
आच्छादन कर पुरुषको, विलसे देह विलासु ॥
मन माया बहु छल कियो, कीन्हो बहु विस्तार ॥
सुगति गयी निजरूपकी, प्रगट्यो तन हंकार ॥

इस प्रकारसे इस मनकी उत्पत्ति हुई ।

सद्गुरु कहते हैं हे धर्मदास ! शरी को इस भयानक राजा मनकी दो स्त्रियाँ हैं तिनमेंसे एक प्रवृत्ति है । जिसमें यह मन बहुत ही राग को प्राप्त हुआ है, अर्थात् उसके साथ अत्यन्त स्नेह करता है ।

प्रवृत्तिवंशवर्णन

महामोह तेहि सम्भव सुत अति लायका ॥
गर्व अति बलवान विजय रण दायका ॥
महाक्रोध अनुजै तेहि निकट अघोरता ॥
लोभ संगेतहि ठाढ आशा अधिक कठोरता ॥
तृष्णा वीर महाबलि अखिल संचारई ॥
को बांचे मेरी घात सो ऐसो विचारई ॥

जडता ताहि सखी संग मनकहँ राचई ॥
अहनिशि करत कोलाहल उभै ना छाजई ॥

टीका-मनकी प्रवृत्ति स्त्री है उसके पुत्रोंको बतलाते हैं, हे धर्मदास ! उस प्रवृत्तिको सबसे बडा और योग्यपुत्र मोह उत्पन्न हुआ है। और दूसरा उनका गर्व महाबलवान और प्रवृत्ति की रक्षा करनेमें महा योद्धा रणबांकुरा है। महामोहका तीसरा भाई अर्थात् प्रवृत्तिका तीसरा पुत्र काम है और चौथा क्रोध है। ये दोनों बहुत ही मलीनता से पूर्ण हैं। मोहका पांचवाँ भाई और प्रवृत्तिका पांचवाँ पुत्र लोभ है जिसके साथ आशा और कठोरता दो बहिन रहती हैं। और तृष्णा वीरा भी उनके साथ है, वह महाबलवान है सर्वमें उसका संचार है, वह अपने मनमें ऐसा गर्व रखती है कि मुझसे कोई भी बच नहीं सकता। और जडता भी उसी तृष्णा के साथ रहती है जो मनको अत्यन्त प्यारी है। मनकी अत्यन्त प्रीति के कारण वह जडता सदा कोलाहल करती रहती है अर्थात् सदा द्वन्द्व उठाया करती है।

यद्यपि इस ग्रन्थ में प्रवृत्ति की संतानके वर्णन करनेमें बहुत कुछ भूल हुई है क्योंकि तृष्णा जो स्त्रीलिंग शब्द है उसको पुँल्लिग करके लिखा है और हंसमुक्तावलीके प्रसिद्ध टीकाकार श्रीभजनदासजीकी टीकामें भी ऐसी भूल पायी जाती है, तथापि यदि यह मानलिया जावे कि यह भूल ग्रन्थकर्ता और टीकाकारकी है सो ठीक नहीं है, क्योंकि वर्तमान कबीरपंथ के साहित्य भंडार में बहुत परिश्रम करनेपर भी जब एक भी ग्रन्थ लेखक भट्टाचार्य्योंकी कृपासे शुद्ध नहीं मिलता है तब ग्रन्थकार अथवा टीकाकारके ऊपर दोष कदापि नहीं आ सकता। इस कारण मूल प्रबोधच-

न्द्रोदयनाटक जिसके आधारपर यह मोह और विवेकके युद्धकी कथा प्रचलित हुई है, उसके अनुसार प्रवृत्तिकी सन्तानका वर्णन नीचे लिखता हूँ। देखो श्रीअनाथदासजीकृत प्रबोधचन्द्रोदयनाटक–

दोहा–त्रिया युगल मनभूपके, तिन ढिग सब संपत्ति ॥
एक नाम प्रवृत्ति है, एक नाम निवृत्ति ॥
प्रथमै दल प्रवृत्तिको, वरणि कहौ विस्तार ॥
तेहि पाछे निवृत्तिको, वरणों सब परिवार ॥
प्रथमैं पुत्र प्रवृत्तिके, भयो मोह भयभीत ॥
दूजो सूत उत्पति भयो, कामसकलरणजीत ॥
महाक्रूर भौ तीसरो, क्रोध नाम अतितेज ॥
चौथो अतिदारुण भयो, लोभ पापको एज ॥
दंभ पुत्र भयो पञ्चमो, छठो गर्व परियार ॥
सातैं मद उत्पनि भयो, विकटवीर विकरार ॥
अष्टम पुत्र प्रवृत्तिके, नाम अधर्म कुरूप ॥
मुक्तिपंथते चरण गहि, डारत है भवकूप ॥
आठैं पुत्र प्रवृत्तिके, असत्य वासना धीर ॥
वर्णनकरोंकुटुम्ब अब, जो जाको सुत तीर ॥

मोहपरिवार

महामोहकी नारिप्रिय, मिथ्या दृष्टि प्रमान ॥
पुत्र तासु हंकार है, ममता वधू सुजान ॥

कामपरिवार

मदननारि रतिप्रकट है, लालच सुवन बखान ॥
लोलुपता ताकी वधू, रंच नहीं परमान ॥

१ प्रबोधचन्द्रोय नाटक संस्कृतका वेदान्त विषयक एक प्रसिद्ध नाटक है।

क्रोधपरिवार

क्रोध नारि हिंसा असत, ताको सुत अविचार ॥
भूल वधू ताकी कठिन, पोषै सब परिवार ॥

लोभपरिवार

तृष्णा स्त्री लोभ की, ताको सुत है पाप ॥
चिन्ता त्रिय जाके चितै, करैं सदा सन्ताप ॥

दम्भपरिवार

दंभ नारि आशा मलिन, ताको सुत पाखण्ड ॥
वधू अविद्या तासु तिय, भरमावे नौ खण्ड ॥

गर्वपरिवार

निन्दा वनिता गर्वकी, जाको अपयश पूत ॥
अपकीरति ताकी वधू, प्रकट निरंकुश धूत ॥

मदपरिवार

नारी मदकी ईषणा, जाके सुवन विरोध ॥
सा परधा[1] ताकी, वधू, मेटै उरको बोध ॥

अधमपरिवार

अश्रद्धा नारि अधर्मकी, सुत असत्य बलवान ॥
विषय वधू आसक्ति पुनि, मेटै मुक्ति निधान ॥
आठ पुत्र कुटुम्ब यह, कह्यो भिन्न विस्तार ॥
सुता प्रिया प्रवृत्ति की, बर्णौं तेहि परिवार ॥
जो अदया भगवान की, ताते भयो अज्ञान ॥
दीनी ताहि विवाहि सो, मोह हर्ष बलवान ॥
मिलि अज्ञान वासना, तिनते बहु संतान ॥
जेते लिखनेमो परै, तेते करौं बखान ॥
प्रथमैं सुत संशय भयो, लै विक्षेप बहु भाव ॥

१ स्पर्धा ।

आलस नींद अनर्थ पुनि, रजतम कपट चवाव ॥
कर्म असंयम तापत्रय, नानारोग विशाल ॥
यंत्र मंत्र नाटक घने, अरु प्रपंच जंगजाल ॥
औंर भ्रष्टत धृष्टता, व्याकुलता अति चाह ॥
भुक्ति कामना कृपणता, जनमन कर उरदाय ॥
अयश ईषणा विषमता, अकृपा कुटिलता नाम ॥
इत्यादिक औरे घने, कहे काम दुख धाम ॥
असत्य वासनाके भये, पुत्र प्रचण्ड अनेक ॥
सुता भयी पुनि जगमती, भूली कुलकी टेक ॥
पुत्र वासना को बली, असत्संग आलस्य ॥
लै विक्षेप मंत्री तिने, करि राख्यो नृप वस्य ॥
सेना बहुत मोहकी, वर्णन बने न सोय ॥
पलमें हरै विवेक बल, रहै ममता रस भोय ॥
महा कुन्यायी अति छली, चंचल बली कुटेव ॥
जग पोषक दोषक सुमत, करै मोह पद सेव ॥

छन्द–छाजतसेनमदमोहमंसा, क्रोध दारुणभटमहा ॥
आशातृष्णा तेहि भंडारी, विभौंकी कांछाकहा ॥

टीका–सद्गुरु कहते हैं हे धर्मदास ! इस प्रकारसे प्रवृत्ति की सेना मोह, मद महावीर क्रोध से सुशोभित होरही है। और आशा, तृष्णा, भंडारी है जो चाहे कितना भी उसके भण्डारमें आवे किन्तु कभी उसकी तृप्ति नहीं होती है। जब मन

---

१ बाजीगरी हाथ चालाकीका काम। २ बेशर्मी निलंज्जता बे अदनी इस भ्रष्टता के स्थानमें एक पुस्तक में भ्रष्टता लिखा पाया गया है, यदि भ्रष्टता यहां माना जाय तो वह भ्रष्टताका विशेषण हो जायगा. जिसका अर्थ होगा आगे चलानेवाली भ्रष्टता और भ्रष्टता प्रधान है जहाँ किन्तु इसकी अपेक्षा भ्रष्टता शब्द यहां अधिक उपयुक्त है इस कारणसे भ्रष्टताही लिखा है।

राजाकी प्रवृत्तिका यह ठाटबाट तब है मनको अन्य विभौकी इच्छा कहांसे होवे ।

अथ निवृत्तिवंश वर्णन

निवृत्ति दूजी अंगना जिहि तिहि मन राजा थोरो चहै ॥
प्रवृत्ति पूजा गति न दूजा ताहि चित निशिदिन रहै॥

टीका-उस मन राजाकी दूसरी स्त्री निवृत्ति है जिससे मन प्रेम नहीं करता क्योंकि मन प्रवृत्ति नामक स्त्रीमें ऐसा लुब्ध रहता है कि दिन रात उसके बिना मनको क्षणमात्र भी कल नहीं पड़ता है।

तेहि सुत जनेउ विवेक परम दृढ आसना ॥
सात्त्विक अस्त्र ले हाथ खड्ग सो शासना ॥

टीका-उस मन राजाकी निवृत्ति नामक स्त्रीमें विवेक नामका पुत्र उत्पन्न हुआ सो विवेक निश्चल और दृढ आसनवाला है और उसने अपने हाथमें सतोगुणका अस्त्र ग्रहण किया है ।

वस्तु विचार, क्षमा दया तेहि भ्राता भयो ।
तेहिंको अनुज संतोष अतिहिं आनन्द ठयो ॥
विद्या ताहि सहेली नीति बिचारई ॥
शील सनेह, सिखावन, पाठ सुधारई ॥

टीका-विवेक के और भी भाई बहिन उत्पन्न हुए । वस्तु विचार, क्षमा, दया, संतोष, विद्या, नीति, शील, सनेह, शिखपन और अध्ययन इत्यादि निवृत्तिकी संतान इत्यादि प्रकट हुई । प्र० चं० ना० श्रीअ० दा० जी कृत ।

दोहा-अब रानी निवृत्तिको, वर्णों सब परिवार ॥
जाके श्रवण बिचारते, मिटै कुमति संसार ॥
सुत विवेक प्रथमे भयो, बड उदार गुण धाम ॥
दूजो वस्तु विचार पुनि, हरे कामना काम ॥
तीजे सुत धीरज भयो, अचल वीर सुखकन्द॥

चौथो सुत संतोष पुनि, हरै सकल जग द्वन्द ॥
पञ्चम पुत्रसु है मुक्ति धाम सुख रूप ॥
छठौं पुत्र पुनि शील है, लक्षण सबै अनूप ॥
धर्म्म पुत्र भयो सातवों कुलमण्डन अतिधीर॥
अष्टम सुत बैराग है, मेटै ताप शरीर ॥
विष्णुभक्ति कन्या भयी, लक्षण सब गम्भीर ॥
सुवन सबै निरवृत्तिके, करैं मोह उर पीर ॥
ये रानी निवृत्ति के करैं, आठ पुत्र अति शूर॥
भक्ति सुता कुलपोषिनी, करैं कुमतिको दूर ॥
अब इनके सुत त्रिय बधू, बरणि कहौं तिन नाम ॥
मुक्ति पंथ अनुकूल सब, पुनि सुख प्रति अभिराम ॥

विवेकपरिवार

रानी रायविवेक की, ब्रह्मसुविद्या नाम ॥
पुत्र ज्ञान आनन्द त्रिय, ता असंग सुखधाम ॥

विचारपरिवार

रानी राय विचार की, निश्चय पूरण काम ॥
पुत्र नेम दृढता बधू, भय मिटै सुखधाम ॥
धीरज की त्रिय है क्षमा, हरै क्रोध को ताप ॥
पुत्र आर्जव गर्व हर, मुदिता बधू अलाप ॥

संतोषपरिवार

तृप्ति नारि संतोष की, जाको सुत आनन्द ॥
करुणा बधू अनूप है, भय मेटै सुखकन्द ॥

सत्यपरिवार

सत्यनारि निज साधुता, सुत निष्कपट उदार॥
जिज्ञासा ताकी बधू, प्यारी सब परिवार ॥

शीलपरिवार

शील नारि लज्जा सुभग, प्रलय करै उरशूल ॥
सुयश सुवन कीरति बधू, शुभ मारग अनुकूल ॥

धर्मपरिवार

श्रद्धा नारि सो धर्म की, सुत प्रकाशता नाम ॥
सुता भयी सतबासना, बधू साधता जाम ॥

वैराग्यपरिवार

रानी निज वैराग्य की, उदासीनता नाम ॥
सुत अभ्यास निराशता, बधू सकल सुखधाम ॥

प्रवृत्ति सौत सिहात सो देखत परजरी ॥
सबहि सुनत हँकार पौरुष बातें करी ॥
धिग सुत तुव पुरुषार्थ मृतक लेखऊँ ॥
सौतिन सुनत बिदार मरण निज पेखऊँ ॥

टीका—हे धर्मदास ! इस प्रकारसे मन राजाकी दोनों स्त्रियोंके परिवार हुए उनमेंसे प्रवृत्तिके वंशकी अत्यन्त वृद्धि होने पर भी वह निवृत्तिके वंशको देखकर सिहाती है। इससे अपने सब पुत्रोंको बुलाकर कहती है कि हे पुत्रो ! तुम्हारे पुरुषार्थको धिक्कार है । सौतनके वंशकी वृद्धि देखकर मेरा कलेजा जलता है । इससे यातो तुम निवृत्तिके पुत्रोंको मारकर मेरेको सन्तोष दो नहीं तो अपनी मृत्युकी राह देखो ।

महामोह सुनि गरजेउ मातुल सूनियो ॥
तुव आज्ञा होय निपातों चितकितगूनियो ॥
विवेकहिं आदि सँहारू नेक न बांचई ॥
करूँ निकंटक राज प्रभ्र मन रांचई ॥

छन्द–प्रश्न राचे कोइ न वाचे कटक देखत रिपु डरे ॥
ब्रह्माण्ड कंपे अखिल झंपे इंद्र दशदिश खरभरे ॥
विविधआयुध युत्थयुत्थप सुभट जहँ तहँ तरजहीं ॥
पव पात सम अवघात मनो एकएकन गर्जहीं ॥

टीका–हे धर्मदास ! प्रवृत्तिके उपर्युक्त वचनको सुनकर मोहने कहा कि हे माता ! आप चित्तमें इतनी चिन्ता क्यों करती है ? आप आज्ञा देवें तो विवेक आदि निवृत्ति आदिके समस्त परिवारको नाश करदूँ । मेरे मनमें तो सदा ऐसी लगी रहती है कि, विवेक आदि सबको मारकर निष्कण्टक राज करूँ । अब तो आपके मनमें भी जब ये बात आई है और आपने मुझसे पूछा है तब मैं अपनी प्रबल सेनाके साथ विवेकका सर्व नाश कर दूँगा । मेरी सेना ऐसी प्रबल है कि, जिसके तेजसे ब्रह्माण्ड भी कम्पायमान होता है । मेरे इस प्रबलसेनाको देख करके शत्रुकी सेना कभी धीरज नहीं धारण कर सकेगी । मेरी सेना अखिल ब्रह्माण्डको आच्छादन करनेवाली है । इन्द्र जो देवतों का राजा है वह भी मेरी सेनाको देखकर घबरा जाता है ॥

मेरी सेनाके योद्धा लोगों ने नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण किये हैं और एक २ बारकी गर्जनाही ऐसी है जिसको सुनकर पवनके झपाटे लगनेसे समान सब गिर जाते हैं ।

हे धर्मदास ! इस प्रकारसे मोह अपनी शूरता और प्रतापका बखान करके, माताकी आज्ञा पाकर विवेकराजासे युद्ध करनेको रवाना हुआ ॥

जननी कहँ शिर नाय समर शीघ्रहि चले ॥
युत्थप दंभ समाज कहत रिपु दलमले ॥

टीका-माताको नमस्कार करके दम्भके समाजको आगे करके मोह राजा विवेकके सन्मुख आया। तब विवेक उसकी चमक दमकको देखकर घबराने लगा। विवेकको घबराते देखकर निवृत्तिकी सहेली विद्याने निवृत्तिसे जाकर सब वृत्तांत कहा।

विद्या जाय निवृत्तिहि बात जनायऊ ॥
तब सौतिन सुतन अनुज विरोधहिं आयऊ ॥

टीका-विद्याने निवृत्तिसे कहा कि, तुम्हारी सौत प्रवृत्तिके पुत्र तुम्हारे पुत्रसे विरोध करके युद्ध करनेको आये हैं और।

चाहत बन्धु विमातहि तुरति घातऊँ ॥
छाडें नेक न काहू सबहि निपातऊँ ॥

टीका-और वह ऐसी इच्छा रखता है कि, तुम्हारे सब पुत्रोंका नाश करके एकको भी जीता न छोडे ॥

निवृत्ति निज दूतहि धर्म बुलायऊ ॥
तातें सुत कह बुलाई भाव बुझायऊ ॥

टीका-विद्याकी बातको सुनकर निवृत्तिने अपने दूत द्वारा धर्म आदि सब पुत्रोंको बुलाकर उसने कहा कि,

बन्धु विमातिक धरि सो, रणयुत्थ आवहीं ॥
समर सोई सुन ठयो पराजय पावहीं ॥
सुमता करि सब सुन्दर मंत्र विचारहू ॥
दुविधा अरि अज्ञान सो जानि सँभारहू ॥

टीका-निवृत्ति अपने पुत्रोंसे कहती है हे पुत्रो! देखो तुम्हारे सोतले भाई सब तुमपर चढ आये हैं और युद्ध करके तुम्हारा नाश

करना चाहते हैं इस कारण तुम्हें अब उचित है कि, परस्परसुमति करके ऐसा उपाय विचारो जिसमें उसने अपनी रक्षा कर सको।

दृढता दण्ड विमलचित धीरज दीजिये ॥
दया पताका साजि समर सुत कीजिये ॥

टीका-निवृत्ति कहती है हे पुत्रो! दृढता और राग द्वेष रहितता और धीरज द्वारा परस्पर एकमेक होकर दयारूपी पताका को फहराते हुए तुम भी युद्धके लिये परस्थान करो।

छन्द-पाई शिक्षा भयी इच्छा भूमिरणसर सजि चलै ॥
आनन्द तबल बजाय तब रिपु सेन चाहत दलमलै ॥
मद मोह आदि विराजता सब ध्वजा ईर्षासजावहीं ॥
निजमूर्खताको दण्ड गहि ममता निशान बजावहीं ॥

टीका-इस प्रकार जब निवृत्ति अपने पुत्रोंको आज्ञा दे चुकी तब विवेक राजा अत्यन्त दृढ इच्छाके साथ आनन्दका धौंसा बजाकर इस उत्साहके साथ सेना लेकर रणभूमिको चले मानो तत्कालही शत्रुके दलका नाश कर देंगे।

विवेककी सेनाको ऐसे ठाटबाटसे आती देखकर मोह राजा अपने सब भाइयोंके साथ ईर्षाकी पताका स्वरूपकी अज्ञानताका दण्ड और ममताका निशान लेकर आगे बढा ॥

तब विवेक निजमन्त्री तुरंत हँकारेऊँ ॥
कहु मन्त्री दृढ आगम समा विचारऊँ ॥

टीका-मोहराजाकी सेना रणमें प्रस्तुत देखकर विवेक राजाने अपने मंत्रियोंसे संमति पूछी कि, हे मित्रवरो! समयानुसार विचार बतलाइये जिससे मोह राजाको प्रास्त कर सकें।

सुमती कहे सुनु पुंगव मतिके आगरा ॥
समर बूझिके कीजे जगत उजागरा ॥
प्रथमहीं दूत पठाय नीति बहु विधि कहो ॥
नहि माने सतभाय तबहिं आयुध गहो ॥

टीका—विवेक राजाके पूछनेपर सुमतिने कहा कि, हे राजन्! आप बुद्धिमान हो विग्रह करनेमें जहाँतक हो विचार कर कार्य्य करना चाहिये। प्रथम दूत भेजकर मोहको बहुत प्रकारसे नीति द्वारा समझाइये यदि वह मान जाय तब तो ठीक ही है और नहीं तो फिर पीछे हथियार उठाकर युद्ध करना चाहिये ॥

शील दूत कहँ बोली शिखापन दीनेऊ ॥
चल्यो तुरत शिर नाय विदा जब कीनेऊ ॥

टीका—हे धर्मदास! जब सुमतिने इस प्रकारसे कहकर नीति का मार्ग बताया तब विवेक राजाने शीलको बुलाकर कहा कि, हे शील! आप दूत बनकर मोहराजाके पास जाओ। और जो कुछ मोह राजासे कहना था वह सब अच्छी प्रकार शीलको सिखाकर बिदा किया। फिर तो शीलविवेकके पाससे चल कर मोह राजाके दरबारमें पहुँचा ॥

मोह आदि भ्राता जे सबहि सुनायऊ ॥
बन्धु विमात संदेश सो सबहि बुझायऊ ॥

टीका—शील दूतने मोह राजाकी सभामें जहाँ सब भाइयों सहित मोह राजा बैठा था पहुँच उसके सौतेले भाई विवेकका संदेशा सुनाया ॥

कारण कौन विरोधेऊ बोलहु नागरा ॥
बन्धव सम होय कीजे राज उजागरा ॥

टीका-शीलने मोहकी सभामें कहा कि, हे चतुर राजा मोह ! किस कारणसे आपने विरोध ठाना है सो कहिये. आपको तो सब भाइयोंके साथ मिलकर पूर्ण शक्तिके साथ राज्य करना चाहिये। देखिये तो-

मन राजा तुवतात त्रिभुवनपति स्वामिया ॥
शुभ अरु अशुभको कारण अन्तर्यामिया ॥
अनुमादिक अनुगामि अनुज त्रिदशपति ॥
तेहिके सुत कुमति कहा कीनी गति ॥

टीका-आपके पिता मनराजा जो हैं सो स्वर्ग (सतोगुण) मृत्युलोक (रजोगुण) और पाताल (तमोगुण) के राजा हैं तीनों लोकमें इनका आन फिरता है। और वही मनराजा शुभ अशुभ दोनोंका कारणस्वरूप हो अन्तर्यामी बना हुआ है ! हे मोह राजा! आपके पिता आपके पीछे२ सदा आपको मद(काम) देते रहते हैं और जहाँ २ आप जाते हो सदा आपके पीछे वह भी जाते हैं। और आपके पिताका जन्म आपके पश्चात् होकर तेरहों भुवनके राजा बनते हैं। ऐसा समर्थ राजा मन उसके पुत्र होकर आपने यह कुमति क्यों ठानी है।

अनुमादिक शब्द अनु और मादिक शब्दोंके संयोगसे बना है इसका अर्थ हैं अनु = पीछे। मादिक = मद करनेवाला अर्थात् पीछे जो मद अर्थात् काम करे उसे कहते हैं अनुमादिका। यहाँ मन जब प्रवृत्ति-में लुब्ध होता है तब मोहकी प्रबलता होती है। मोहकी प्रबलता होने पर मन सदा उसको सहायता देता है।

अनुगामी शब्दका अर्थ है पीछे चलनेवाला, जब मन प्रवृत्तिमें लुब्ध होता है तब सदा मोहके पीछेही पीछे दौड़ता रहता है अर्थात् जहाँ मोह दृढ होता है वहांही मन भी लुब्ध होता है उससे अलग नहीं होता।

अन्तर्यामी कहिये सबके अन्तर अर्थात् अन्तःकरण का जाननेवाला हो।

अनुज कहते हैं (अनु = पीछे, ज = जन्मना) पीछे जन्म लेनेवालेको सो यहाँ मन को अनुज कहनेका तात्पर्य यह है कि जहाँ मोह नहीं हो वहाँ मन भी नहीं होता। इस शरीरमें मोह दृढ होनेहीसे मन की विशेष प्रवृत्ति इसमें होती है।

त्रयोदशपति (त्रयोदश = तेरह, पति = राजा) तेरह जो पांच ज्ञानेन्द्री और पांच कर्मेंद्री तथा बुद्धि, चित्त, अहंकार इन तेरहों का राजा है। अर्थात् जब ये इंद्रियाँ विषयमें प्रवृत्त होती हैं तब मनमें उन विषयोंका राग उत्पन्न होता है। इन तेरहोंको पश्चात् उन विषयोंमें मन प्रगट होने पर भी आप सबका राजा बन जाता है। अर्थात् प्रथम इंद्रियाँ विषय को ग्रहण करती हैं पश्चात् मन उनके ऊपर राज करने लग जाता है, इंद्रियाँ सब मनकी आज्ञाकारिणी बनती हैं और मन उनका शासक राजा बनता है।

छन्द-कुमति कीन्हो अयश दीन्हो बन्धु चित्त धरिबूझिये ॥ अंत गर्व न रहत काहू मिथ्या आश न कीजिये ॥ सुनत मोह राज समाज युत्थप क्रोध दारुण खर भरयो ॥ चाहत संघारन दूतको जिमि आज्य अनिल में परयो ॥

टीका-शीलने कहा हे मोहराज! ऐसे प्रतापी जो आपके पिता मन राजा हैं उनको भी आपने अपने इस विरोधसे अयशका भागी बनाया है। सब यही कहेंगे कि देखो मनराजा ऐसा हो गया है कि अपने पुत्रोंको भी सम्हाल नहीं ले सकता, उसके पुत्र सब स्वतन्त्र बनकर परस्पर कटे मरते हैं। इस हेतु हे मोहराजा! आप कुमतिके कहनेमें न आकर बन्धु विरोध मत कीजिये। और यदि इस बात को नहीं मानते हैं तब इस बातको स्मरण

रखिये कि, गर्व किसीको रहा नहीं हैं इस लिये मिथ्या आशा को छोडकर सब भाई प्रेमपूर्वक राज्य करो।

हे धर्मदास ! शील दूतके उपर्युक्त शिक्षाप्रद वचन सुनकर मोह राजा सहित उसके सर्व समाज और सेनाभरमें कठिन क्रोधका आविर्भाव हुआ। सब चारों ओरसे लाल २ आखें करके शीलको इस प्रकार देखने लगे मानो उसे नाश करनाही चाहते हैं। शीलदूतको विवेक राजाने तो समझा बुझाकर मोहको युद्धसे रोकने और सन्धि कराने के लिये भेजा था, किन्तु दूतके वचनने मोह के समाजमें उल्टाही फल प्रगट किया। जिस प्रकार जलती हुई अग्निमें घृत पडनेसे उसकी ज्वाला और भी बढती है उसी प्रकार मोहकी सेनाका क्रोध अधिक बढ गया। मोह राजाने उसी क्रोधके आवेशमें शीलसे कहा।

जाय कहौ निजनाथही जो उबरन चहै॥
भागै तजि पितुराज मौनव्रत गहि रहै॥

टीका-मोहने कहा हे शील! अपने राजा से जाकर कहो कि, यदि वह अपना कुशल चाहता है तो चुपचाप पिता (मन) के राजसे निकल कर अन्यत्र भाग जावे। अथवा यदि राज्यमें रहनाही है तो मौनव्रत धारण करके अपना कालक्षेप करले।

मोह राजाके ऐसे गर्वित वचन को सुनकर शीलदूत विवेक राजाके पास पहुँचा।

दूत वचन प्रति उत्तर आय सुनायऊ॥
सुनत विवेक समाज निशान बजायऊ॥

टीका-शीलने विवेक राजाके सम्मुख आकर मोह राजाके दरबारमें जो जो कुछ बीता था सब सुनाय दिया। जब विवेक-

ने देखा कि मोहराजा किसी प्रकार नहीं मानता तब युद्धके लिये प्रस्थान करनेकी आज्ञा देदी। आज्ञा पातेही निशानदार सबसे पहले निशान लेकर आगे निकला और उसके साथ ही साथ बाजेवाले भी रणका बाजा बजाते हुए रवाने हुए ॥

महा मोह कुलाहल रिपुदल आयऊ ॥
अहं डिम्भ युत्थ व्याकुल बहुत सिधायऊ ॥

टीका-इधर तो विवेक राजाकी सेनाने चढायी की। उधर शील दूतको कडी २ बातोंको सुनाकर मोह राजा विवेक राजाको भय-भीत जानकर आनन्द विलासमें अचेत हो गया। इतनेहीमें विवेक राजाके दलके निकट पहुँचने पर दूतोंने जाकर मोह राजाको समाचार दिया कि, विवेक राजाकी सेना युद्ध करनेके लिये सजग होकर आगयी है। दूतके वज्र समान वचनको सुनते ही मोह राजाकी सेनाभरमें कोलाहल मच गया। अहंकार सेना और दम्भ दोनोंही सेनापति बहुत व्याकुल होगये और अपनी सेनाको लेकर वेभी आगे बढे। डिम्भ शब्द दम्भ शब्दका अपभ्रंश है ॥

(मोहवश हो देहाभिमानमें पडे हुए विषयासक्त मनुष्योंके हृदयमें सत्संग और सत्शास्त्रोंके श्रवण द्वारा जब विवेक प्रवेश करने लगता है उस समय हृदयमें घबराहट उत्पन्न होती है)

चल्यो तुरत गहि शूल कुबुद्धि आयुध गह्यो ॥
समर युक्त ह्वै आयो अघमंत्री कह्यो ॥

टीका-घबराहटमें पडा हुआ मोह राजा पापमंत्रीके कहनेसे स्वयम् शूल और कुबुद्धि शास्त्रोंको धारण कर युद्ध करनेके लिये तैयार हो आया। राजाको स्वयं रणमें जानेके लिये प्रस्तुत

देखकर सेनापतियोंमें से काम सेनापति हाथ जोडकर कहने लगा ॥

कामसेन सेनापति तेहि शिर नायऊ ॥
हे स्वामी केहि कारण निजहिं सिधारहु ॥

टीका–सेनापति कामसेन शिर नवा करके मोह राजासे कहने लगा कि हे स्वामी! आप स्वयम् युद्धके लिये क्यों जाते हैं?

आज्ञा करौ विवेकहिं गहिलै आवऊँ ॥
भ्राता सब सेनापति तुरत बँधावऊँ ॥

टीका–हे राजन्! यदि आप आज्ञा करो तो राजाको उसके सब भाइयों और सेनापतियों सहित बांधकर ले आऊँ। कामसेनकी युक्ति और उत्साहपूर्वक वचनको सुनकर मोहराजाने उसे युद्धमें जानेकी आज्ञा दी। तब–

आयसु मांगि चले तब रिपुदल आयऊ ॥
रदपट फरकत आतुल वचन सुनायऊ ॥

टीका–मोह राजासे आज्ञा मांगकर काम विवेक राजाके दलके सन्मुख आकर उपस्थित हुआ। उस समय कामके होंठ क्रोधके मारे फरक रहे थे। क्रोधके आवेशमें आकर कामने विवेक-राजाकी ओर सम्बोधन करके बहुत आतुरतासे कहना आरम्भ किया। रद = दांतपट = परदा अर्थात् दाँतोंका परदा होंठ॥

रे विवेक तोहि कच धरि तुरत संहारि हैं ॥
मोहि देखत कौन सो मूल उचारि हैं ॥

टीका–काम विवेकराजासे कहता है रे विवेक! देख अभी तेरे बाल पकडकर मैं तेरा नाश कर देता हूँ। देखें कौन मेरे सम्मुख शब्द भी बोल सकता है? मैं तेरा मूल नाश करता हूँ। (अन्तःकरण जब शुद्ध हो जाता है तब उसी शुद्ध अन्तःकरण

में विवेक प्रगट होता। इस कारण विवेकका मूल शुद्ध अन्तः करण है जिस समय मनुष्यको काम उत्पन्न होता है उस समय अन्तःकरण मलिन वासना और देहाभिमानसे पूर्ण हो जाता है तब शुद्धान्तःकरणका अभाव होकर मलिन अन्तःकरणका प्रादुर्भाव होता है) ॥

मूल गही उपार डारूँ मोसन करत सरभरै ॥
विचार सुनि बोलत विवेकहि संपुट युगकरधरै ॥

टीका-काम कहता है रे विवेक तू क्या मेरी बराबरी करना चाहता है? मैं तेरे मूलको ही उखाड कर फेंक दूँगा। कामके ऐसे अहंकार युत वचनको सुनकर विचारने राजा विवेकसे हाथ जोडकर विनय किया कि-

सुनु सुमतिनायक परमलायक दास कौतुक देखिये ॥
काम क्रोध अभिमानिया नट चेटका सम लेखिये ॥

टीका-हे सुमतिके मालिक परम योग्य विवेकराजा! इन काम क्रोध और अभिमानादिकोंको नाटकी चेटकियोंके समान जानिये। इनका बलही क्या? मुझ दासके कौतुकको देखिये। इस प्रकार विनय करके और विवेककी आज्ञा लेकर विचार रणमें कामके सम्मुख उपस्थित हुआ ॥

एक दिशि गजंत काम विचार तब उभय दिशा ॥
काम करत बल जब अंत तब तरजत रसा ॥

टीका-हे धर्मदास! अब एक ओर तो महा दुर्धर्ष काम गरजने लगा और दूसरी ओर विचार अपना प्रकाश फैलाने लगा। अब दोनोंका युद्ध होना आरम्भ हुआ। कामने जब अपना पौरुष कहके सुनाया, तब विचारने उसको तुच्छ बताया विचारके मुखसे तिरस्कारके वचन सुनकर काम कहने लगा ॥

रे विचार मतिहीन सकल वशि मैं कियो ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश सबहि ताजन दियो ॥

टीका-काम कहता है रे मतिहीन विचार! तेरी क्या बिसात है, मैंने सब चराचरको अपने वशमें कर लिया है। औरकी कौन कहे ब्रह्मा विष्णु शिव आदि सबको मैंने ताजन दिया है, (मारा है)। इतनेही नहीं मेरे बलका प्रताप तू और सुनले।

सुरपति शसि हि राते गौतम त्रिय कही ॥
विवेक विचार जो थाके बासा में गही ॥

टीका-रे विचार! सुन जिस समय मैंने इंद्र और चन्द्रमा को वशमें किया, तब उनकी बुद्धि नष्ट होगयी, विवेक विचार सब जाता रहा और मेरी आज्ञासेही परम पवित्र गौतम मुनिकी पतिव्रता स्त्रीको भ्रष्ट किया। उस समयभी मैंने तुम दोनों (विवेक और विचार) को पराजय किया था। इतनी ही नहीं और भी सुन।

व्यास पिता मीन दुहिता रतिबर बस कियो ॥
सुमन शरासन बाण शिवहि बेध्यो हियो ॥

टीका-रे विचार व्यासके पिता परमज्ञान और विवेक विचार में प्रसिद्ध जो पराशर ऋषि थे उन्हींको जब मैंने अपना बाण मारा तब वहां भी तुम्हारा कोई बश नहीं चला, उन्होंने मछली के पेट से निकली मत्स्यगन्धा (मच्छोदरी) से नदी के बीचमें भोग किया। और जब मैंने अपने बाणका लक्ष्य शिवजी को बनाया तब उन्होंने कामातुर होकर मोहिनी को पकड़ने की इच्छा की।

दोहा-कहि कहाय मनसिज हस्यो, बोल्यो वचन उदार ॥
मो सम्मुख जल्पै कहा, मेरो बल अपार ॥

मो रति अति दुस्तरण लखि, जीतैं मोहिं जग कोन ॥
ज्ञान विवेकै आहिदे, लखत मोहिं करि गौन ॥
पग नहिं टिकत सुधर्मको, नहिं धीरज ठहराय ॥
मेरी दृष्टि परतही, वैरागो नशि जाय ॥
मैं मन हरयो विरञ्चि को, निज पुत्री वश कीन॥
शतमख द्विजजाया निरखी, भयो परम अधीन॥
है कोतो बल अंग तुव, अरे सुभट कहु मोहि ॥
मेटों मार विलम्ब नहिं, प्रलय करत हौं तोहि ॥
पछितान्यो कांप्यो हृदय, शोचत वस्तु विचार॥
हौं निर्बल वैराग बिन, अहै सबल अतिमार ॥
वस्तु विचार फिरे तबै, महा समर भय मान ॥
तुरते राय विवेक पहँ, बन्धन कीन्है आन ॥
मन संकोचि दृग नीच करि, कहत वचन नृपपास॥
मेरो बल पहुँचे नहीं, निष्फल भयी सब आस ॥
तब मन्त्री सत्संग कर, औ दूजी अभ्यास ॥
उत्तम मन्त्र विचार के, कहत नृपति के पास ॥
मकरध्वज भुज बल अमित, बाक बीर समरत्थ ॥
वस्तु विचार महाबली, करे ताहि निजहत्थ ॥
दीजै ताहि सहायको, भक्ति ज्ञान वैराग ॥
विजय करे रण सहजही, वस्तु विचार बडभाग॥
सुनि विवेक मन सुख भयो, मान्यो मन्त्र हिय जु॥
तीनों तुरत बुलाइके, ताके संग किय जु ॥
बल पायो फूलो हृदय, चले समर समुहाय ॥
मनसा भूमि सुहावनी, रचे युद्ध तहँ जाय ॥

---

१ इन्द्र । २ गौतमकी स्त्री । ३ कामदेव ।

ठाढो सहित सहाय तब, मदन वीर बलवान ॥
दृष्टि परचो वैराग जब, कछुक दृष्टि सकुचान ॥
वस्तु विचार बोल्यो तबै, महाबली रण गाज ॥
सो हैं करत विवेककी, कित जे हैं रिपु आज ॥
महाकोप करि बोल्यो, तबहीं सबल अनंग ॥
मो सन्मुख एतो बकै. करौ क्षणकमें भंग ॥
कुसुम धनुष वर हाथले, करों बाण सन्धान ॥
सकल अंग पलमें हरैं, मेरो बल अप्रमान ॥
छूटे शर जो समर के, भयो युद्ध भयभीत ॥
गावत युगल समाज तहँ, रणरसमत्त जु गीत ॥
तब विचार वैरागसो, बूझत मन्त्र विचार ॥
अहो बन्धु कीजे कहा. बडो सकल यह मार ॥
तब वैराग विचार के, दीन्हो मतो अनूप ॥
अहो बन्धु शोचत कहा, शोधो शुद्ध स्वरूप ॥
जग मिथ्या रजु सर्पवत, सत्य ब्रह्म निरधार ॥
क्षुद्र निद्य नहिं चित धरो, हरो अनंग विकार ॥
जब वैराग महा बली, दीन्हो मतो अभंग ॥
वस्तु विचार चल्यो तबै, धरि उर परम उमंग ॥
रे निलज्ज पापी कुटिल, दुर्बुद्धी धृक तोह ॥
कहा वस्तु विचार ने, दुष्ट पिसन जन मोह ॥
कह्यो मार अतिदर्प करि, मैं मन मोह्यो भूप ॥
शंकरको मन मोहेउँ, धरचो मोहिनी रूप ॥
मैं पराशर दहन कियो, रावणको घर खोय ॥
शृङ्गी ऋषि वनमें छल्यो, परे त्रिशा वश सोय ॥
जीत्यो एक कटाक्षमें विश्वामित्र सुधीर ॥

१ विश्वामित्रजी मेनकाको देखकर कामातुर हुए थे जिससे शकुंतला का जन्म हुवा ।

देवंअंगना संग लै, छूट्यो धीर शरीर ॥
वस्तु बिचार बोल्यो तबै अब जान्यो तुव भेद ॥
कहा नारि जहँ गर्व तोही, अस्थि मांस त्वच मेद ॥
यह मलकी पुतली प्रगट, नख शिख भरी विकार ॥
प्रगट निरंतर मल स्रवै, अष्ट याम नव द्वार ॥
तासो संगति जो करै, अति मलीन सो जान ॥
शूकर विष्ठा अशुभ योनि, कह तिनको परमान ॥
पुनि मनसिज बोलैं तबै, सुनहु वस्तु बिचार ॥
कियो भोग नहिं नारिको, वृथा जन्म संसार ॥
बडो पदारथ नारि जग, बिनु तिय धाम न काम ॥
ताको धर्म कछु न सधे, जाके घर नहिं बाम ॥
ताते त्रिय सो धन्य है, तिहिं पुर देखु निहारि ॥
सावित्री आज विष्णु ले, उमा लिये त्रिपुरारि ॥
कहै विचार यद्यपि अहै, ब्रह्मादिक ढिग बाम ॥
मो सहाय तद्यपि सबै, सदा मुक्ति निःकाम ॥
सनकादिक मुनि जनकसे; नहिं चितवत तुव रञ्च ॥
वस्तुविचार स्वरूप लहि, नाशै जगत प्रपञ्च ॥
गयी खबर तेहि भूल वह, रे निलज्ज मदमत्थ ॥
हनूमान यक क्षणकमों, शंकर लायो हत्थ ॥
उठ्यो मदन तब कोपिकरि, गह्यो बेगिकर चाप ॥
इषुवर्षा लाग करन, वर्णत नारि प्रताप ॥
कञ्चन सो तन भूल मले, हग कमलनके भाय ॥
ऊँचे उरज विराजहीं, को न देखि ललचाय ॥
चन्द्र वदन तन क्षीण करि, जंघ केदली समान ॥

---

१ मेनका इन्द्रके स्वर्ग की अप्सरा है इस कारण इसको देवअंगना लिखा ।२ ले =लक्ष्मी ।

तापर चीर सुगन्ध बहु, भूषण भूपति जान ॥
विकट दृष्टि जबहीं करे, सुर नर मुनि वश होत ॥
कठिन कटाक्षै जब भिदौ, तब कहँ ज्ञान उदोत ॥
पुनि विचार बोल्यो तबै, जहँ तिय तोहि गुमान ॥
नरक परें तेहि संगते, संगति नाशै ज्ञान ॥
सोरठा-नारी वरने रूप, दुष्ट चित्त विष सो भरी ॥
वरणें को कवि अनूप, चन्द्र वदन कञ्चन तनय ॥
दोहा-अहै अस्थिको पींजरा, चाम लपेटे जाहि ॥
ऊपर चादर रंगि दई, भीतर विष्ठा आहि ॥
नंगी करि जो देखिये, यह तन सुन्दर रूप ॥
यामो कछु धोखो नहीं, प्रकट पिशाच स्वरूप ॥
पृथक अंग जो देखिये, रुधिर अभूषण गन्ध ॥
तब मलीन चर कीच, सो भरी देखिये रन्ध ॥
विष सों ढिग गुण अग्नि सो चितवनि बाण समान ॥
हित सों ढिग मन मिलन सो, सुख चुरैल पकवान ॥
सो नर पावन है सदा, जो न करै तिय साथ ॥
धरे पखौवा मोरके, नन्दनन्द हू माथ ॥

प्रबोध चन्द्रोदय ।

बोले वस्तु विचार मूढ नहिं बूझई ॥
अंध चछुविहीन निपट नहिं सूझई ॥
कौन पुरुषको नारीलिंग उभयो कहां ॥
आतम ब्रह्म स्वरूप सबनमें रमि रहा ॥
कित अनंग कित संग विवेक ते पाइये ॥
सच्चिदानंदसर्वव्यापक चित्तमें ध्याइये ॥

भेद अभेद दोऊ सम ज्ञान विचारहू ॥
अंत अवस्था जानि सोई निरवारहू ॥

टीका-कामके डींग मारनेको सुनकर वस्तु विचारने कहा रे मूढ काम ! तू मूर्ख है तेरेको समझ नहीं पडता है; तू अन्धा है तुझको कुछ सूझता नहीं है।

एकही ब्रह्म आत्मस्वरूप होकर जब सबमें रम रहा है तब स्त्री और पुरुष यह दो लिंग कहाँ हैं। जब एकही सच्चिदानन्द सबमें व्यापक हो रहा है तब कहां काम है और कहां रति है। जिसने इस प्रकारसे निज स्वरूपको विवेककी सहायतासे जानकर भेदाभेद को नाश कर दिया है उसके लिये तेरा अस्तित्वही नहीं तब तेरा वश क्या। स्वरूपज्ञान प्राप्त होतेही तेरी अंत अवस्था आजाती है फिर तेरा बल उसके ऊपर नहीं चलता। किस दृष्टि को धारण करनेसे तेरा बल नहीं चलता सो सुन।

छन्द-निरवारि देखे छानि लेखे दुतिय नहि कोई कहा ॥
नरवत इत उत करत जहँ तहँ ब्रह्म सब मो रमि रहा ॥

टीका-विवेकी पुरुष ब्रह्म विचारको प्राप्त करनेके लिये जब अन्वयव्यतिरेक करके स्वात्मज्ञानको जानता है और अपने प्राप्त ज्ञानकी परीक्षाके लिये सर्व शास्त्र और आचार्योंके मतको छानता है तब उसे विचार ज्ञान द्वारा स्वात्म-निश्चयात्मक प्राप्त होता है जिससे वह सर्व स्त्री पुरुष जड चैतन्य सब ही एक ब्रह्मकी ही लीला देखता है। जिस प्रकार नटको जाननेवाला पुरुष उसके अनेक स्वांगोंमें भी उसे नट ही जानता है, उसे उसके स्वागोंमें दूसरा भाव कदापि नहीं होता। उसी प्रकार ब्रह्मतत्त्वको जाननेवाले पुरुषकी दृष्टिमें जब द्वितीया है ही नहीं तब तेरी स्थिति कहां है।

इत काम सुनिके अस्त्र डारे आनिके चरण पर्‌यो ॥
विचार ब्रह्म उर्द्ध वीर्य्य मोह भय वश खरमर्‌यो ॥

टीका–हे धर्मदास ! वस्तु विचारके निर्मल ब्रह्मज्ञानरूपी बाणसे विंधा हुआ काम तेजहीन होगया और अपने सर्व अभिमान और घमण्ड को भूलकर विचारके आगे अपना हथियार डालकर उसके आधीन होगया । उसके आधीन होतेही उसकी स्त्री रति आदि सब आकर विवेकरायके आगे माथा नवाकर अपने सब पराक्रम छोडकर आधीन होगयी ।

(जिस समय मन कामातुर होता है उसी समय ब्रह्मविचार द्वारा इसे मारनेसे वीर्यका बल जिसके बलसे काम अपना पराक्रम दिखाता है एकदम शान्त हो जाता है ।)

कामको मरते[1] देख मोह राजाके दलमें खलबली मच गयी स्वयम् मोह भी भयभीत हुआ तब–

क्रोध मोह सुनि तुरतही निजबल भाखेऊ ॥
मोसन करि संग्राम कवन पत राखेऊ ॥
विचार विवेक सहित सब सेन संघारि हौं ॥
करौं निकंटराज वचन प्रतिपारि हौं ॥

टीका–हे धर्मदास । काम सेनाके मरनेका समाचार और उसके मरनेसे राजाके भयभीत होनेकी खबर जब क्रोधको पहुँची तब वह उसी समय रणके लिये तैयार होकर मोहराजाके निकट जाकर कहने लगा हे राजन् ! क्या आप जानते नहीं हैं कि, मुझसे संग्राम करके किसीकी पत बची नहीं है । मैं तो सबको जीतनेवाला आपकी सेवाके लिये तैयार हूँ तब आप एक काम

---

१ मरना और शत्रुके अधीन होना इन दोनों बातोंमेंसे आधीन हो जाना मान अपमान सूचक होने से मृत्युसे भी अधिक है इस कारण "मरते देख" लिखा है ।

के मरने से ऐसी चितामें क्यों डूबे हुए हैं। देखिये प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि, अभी संग्राममें जाकर विचार विवेक सहित उसकी समस्त सेनाका नाश करके आपका राज्य निष्कंटक बना दूंगा। आप किसी प्रकारकी भी चिंता न करें। इस प्रकार अपनी बड़ाई आपही करके रणभूमिमें जाकर उपस्थित हुआ।

दोहा-मोह भूप यह सुनतहि, होगया व्याकुल अंग ॥
बूझे मन्त्रिन से यहै, जूझे बन्धु अनंग ॥
बड़ो सुभट मोंसे नमो, हुतो सहस कन्दर्प ॥
मो जीवत सो हत गयो, दुस्तर कठिन जो सर्प ॥
महामोहको वचन सुनि, मोह उठ्यो गण गाजि ॥
मेरे बन्धुहि मारिके, कित जैहैं रण भाजि ॥
मेटौं मारि विवेकमन, ज्ञाने देहुँ बहाय ॥
शील सत्य संतोष सब, चितवत जाहिं पराय ॥
हौं जब प्रगटो तेज ह्वै, संग पुत्र मम चार ॥
व्याकुल करि वैराग्यको, हरौं भक्ति परिवार ॥
असतसंग मन्त्री कहै, हे प्रभु बडभट क्रोध ॥
आयुस जाको दीजिये, विजय करै रण बोध ॥
हरष्यो मोह नरेश तब, सुन्यो क्रोध बल शूर ॥
आज्ञा तब रणको दई, करौ रिपुहि चकचूर ॥
चल्यो क्रोध वंदन कियो, प्रभु आज्ञा धरि माथ ॥
आइ गयो रणभूमिमें, दलबल लीन्हें साथ ॥

टीका-क्रोधका रणमें आगमन सुनकर विवेक राजाने भी विचार करके अपना योद्धा भेजा ॥

तब विवेक क्षमा कहँ आयसु दीन्हिया ॥
सुभट दोऊ संग्राम समागम कीन्हिया ॥

टीका-विवेक राजाने मंत्रियोंसे विचार करके क्रोधके सन्मुख क्षमाको संग्रामके लिये भेजा। अब दोनों ओरकी सेनाके बीचमें एक ओरसे महा विकाल क्रोध और दूसरी ओरसे महाकोमलांगी परमशान्त क्षमाका युद्ध आरंभ हुआ॥

दोहा-नृप विवेक विस्मित भयो, सुनतहि क्रोध प्रभाव॥
बूझ्यो मंत्रिनसे यहै, कीजे कौन उपाय॥
दियो मन्त्र सत्संग वर, धीरज अचल सवीर॥
क्षमा नारि मन भावती, पुत्र आर्य्यव धीर॥
धीरज रु क्षमा पठायो, ज्ञान भक्ति ता संग॥
तेज क्रोधको सहजही, क्षमा करे तन भंग॥
धीरज क्षमा विदा कियो, पुत्र आर्य्यव जान॥
दीन्हें सकल सहायको, विमल भक्ति अरु ज्ञान॥
धीरज धरि धीरज चल्यो, गयो आप रणभूमि॥
जहाँ क्रोध गर्जत रह्यो, नयन मद झूमि॥
मिलि दृष्टिसे दृष्टि जब, भयो क्रोध रिस अंग॥
गरज्यो सन्मुख जायके, मारि करों बल भंग॥

क्षमाको सन्मुख लडनेके लिये आया देखकर क्रोध गरज कर कहने लगा।

क्रोध कहे सुनु भीता मोहिं न जानसी॥
कम्पित है त्रिलोक मरण निज ठानसी॥

टीका-क्रोधने कहा हे डरपोक क्षमा! क्या तू मुझे नहीं जानती है कि, मेरे भयसे तीनों लोक कम्पायमान हो रहे हैं ऐसा जानकरके भी तू मरनेके लिये सामने क्यों आयी है॥

क्रोध सँघारेउ छितिपति राज जित कित कियो॥
क्रोधविवश सुरलोक दैतन जहरहि दियो॥

क्रोध कटुक अतिदारुणको आडो तोही ॥
तेहिको होत संघार मम दरेरा पर जोही ॥

टीका-क्रोध कहता है कि, हमने असंख्य राजाओंका नाश करके उनका राज तितर बितर कर दिया है। हमारेही कर्तव्यसे देवोंने राक्षसोंको विष पिला दिया था। हमारी सेना ऐसी प्रलय है कि जो इसके सन्मुख आता है उसका ऐसा नाश हो जाता है कि कहीं पता भी नहीं लगता। भला ऐसी बिकट सेनाके समक्ष तू क्या वस्तु है और तेरा रक्षक कौन है कि तू मेरे सम्मुख आयी है॥

दोहा-कहा बापुरी भक्ति है, कहा बापुरो ज्ञान ॥
कहा बापुरी क्षमा तू, कहा तोहि गुमान ॥
कहा नृपति तुव रंक है, कहा धर्म सन्तोष ॥
सम्मुख मेरे ना टिकै, जब चितवो भरि रोष ॥
इस प्रकार कहकर फिर क्रोध कहने लगा ॥

माता पिशाची कुजन बन्धु करनकी सामानते ॥
गुरु कौन बापुरा वदन देखुँ मोहि सु बडज्ञानते ॥
निजनारिको अपमान करि वृषली सो लोकसमाज है॥
क्षण सुरति ते तोहि काटिके तब करूँ राज विराज है॥

टीका-हे क्षमा! मेरे पिता राजा मनने अपनी स्त्री निवृत्तिका अपमान करके उसको लौंडीसे भी नीच गतिको पहुँचा दिया है, जिससे समाजमें वह पिशाचनीके समानही आदरको पाती है। और तेरे भाई जो विवेक आदि हैं ये तो महा दुष्ट हैं और तू तो तेजहीन साक्षात् वर्णसंकर समान देख पडती है। हाँ तेरे को मेरे सम्मुख आनेकी शिक्षा देनेवाला गुरु कौन बापुरा है। क्या वह मुझसे अधिक ज्ञानी है? अब देख क्षणमात्रमें दृष्टि डालतेही तेरे सब परिवारका नाशकरके निवृत्तिका नामही मिटा देता हूं॥

दोहा—तबै भक्तिको बोलि ढिग, कहै क्षमा मुसकाय ॥
वचन क्रोध के सुनतहिं, तुरतहिं देव बहाय ॥
कोपि क्रोध बोल्यो तबै, धिग धिग है तुव मात ॥
नाम निवृत्ति जासु तुव, प्रगट भयो कुल घात ॥
तब क्षमा निज पियतन, चितई दृष्टि पसार ॥
कोपि वचन सुनि करि क्षमा, सहिये शब्द विचार ॥
कह्यो क्रोध अतिरिस भरे, रे धीरज मतिहीन ॥
कहा प्रातहि आइ तुम, अशुभ दृष्टि मुहि दीन ॥
लियो ज्ञानको बोलिके, क्षमा आपने तीर ॥
कहत वचन और कछू, मेटि क्रोधकी पीर ॥
कहत वचन अति रिस भर्यो, रक्त वर्ण कर नयन ॥
तन पर स्वेद कंपित अधर; मुखते कटुतर वयन ॥
प्रकट भइ हिंसा तबै, क्रोध नारि विकराल ॥
अब सबको धीरज गयो, प्रगट भयी ज्यों काज ॥
बोली हिंसा रिसभरि, लिये खड्ग विपरीति ॥
कोपि क्षमा मारण चली, लिये खड्ग अपकीर्ति ॥
शतमुख[1] निजगुरु[2] मार्यो, शंभु सतीको तात ॥
कहुको मोरे जियतते, निकसि बाहिरे जात ॥
सुर नरमुनि व्याकुल किये, ताहि सकै कहि कौन ॥
लगी समाधि युगाधि भर, ताहि छुडावत मौन ॥
क्षमा कहे भृगु लात जब, हनी विष्णुके हीय ॥
क्षमा किये प्रभुता भयी, सुर नर मुनिके जीय ॥
क्षमा नाम यह भूमिको, लहत सकल अपराध ॥
है सबके अपराध शिर, जेहि वन्दे सुर साध ॥

---

१ इन्द्र। २ इन्द्रको ब्रह्मज्ञानके उपदेश देनेवाले दध्यङ्ङृषि थे। इन्द्रने इनका शिर काट लिया था उपनिषदोंमें इसकी कथा प्रसिद्ध है आत्मपुराणमें विस्तार से है।

बहुरि क्रोध बोल्यो तहाँ, धरे भार बहु भूमि ॥
मोर भार सहिसके, जाय पताल झूमि ॥
को मोरी तेजै सहे, कहा बडो अस बीर ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश हू, सो उर धरत न धीर ॥
कहे क्षमा पुनि भक्ति सो, हम सब विधि लघु आहि ॥
कब सम्पति यह क्रोधकी, क्यों पटतरि हैं ताहि ॥
क्रोध सुभट बोल्यो तबै, कहत वचन यह क्रूर ॥
मेटो मार विलम्ब नहीं, दया धर्म बड शूर ॥
जैसे कोऊ यत्न करी संग्रहि कीन्हो वित्त ॥
तस्कर पलमें लैगयो, शोक अग्नि जर चित्त ॥
क्षुधा पिपासा नींद पुनि, सिन्धु तरहि ज्यौं यार ॥
गोपद लै बोलो तिन्हैं, ऐसेही वरियार ॥
जबै क्षमा सब सहि रहि, गहि रहि भगवत आस ॥
हृदय समझ बोलत भयी, हम तो हैं तुम दास ॥

यों कहत तुरत क्षमा कहे पौरुष बोलेऊ ॥
कुशल कुशल कहि फिर उत्तर खोलेऊ ॥

टीका–हे धर्मदास। जिस समय क्रोधने महा कटु और हृदयमें शूल उत्पन्न करनेवाले महानिन्द्य वचन कहकर क्षमाके समस्त परिवारको गाली दियो उस समय भी क्षमा शान्तिसे कहने लगी हे क्रोध! आपने जो कुछ कहा बहुत अच्छा कहा वाह! वाह! ऐसेही चाहिये! इस प्रकार बार बार उसकी स्तुति करती हुई क्षमाने कहा आपने जो कुछ अपना पुरुषार्थ और बल वर्णन किया सब ठीक है। इसमें क्या संदेह आप बहुत बडे हैं। इस प्रकारसे क्षमाके कहनेपर क्रोधने उसकी बातोंको कटाक्ष समझकर और भी अपनी शक्ति अधिक प्रकाशित की। और–

कीन्हेसि चरण प्रहार सो अति विहसत भयो॥
तो कुछ मम अपराध स्वामी अब गयो॥

टीका-क्रोधने क्षमापर अपने लातसे प्रहार किया। उधर क्रोधने लात मारा इधर उसके बदलेमें क्षमाने हँसकर हे भाई! हे मालिक! अब मेरा जो कुछ अपराध था सो सब छूट गया। किन्तु

मम हिय अतिहि कठोर चरण मृदुलै अहै॥
शासन उचित सो कीजिये अनुजै निर्वहै॥

टीका-मेरा हृदय अत्यन्त कठोर और आपका चरण अत्यन्त कोमल है इससे आपको चोट लगी होगी सो क्षमा करना, हे भाई! मैं आपसे छोटी हूँ आप मेरे जो उचित शासन समझिये सो कीजिये मेरा निर्वाह सब प्रकार हो सकता है॥

दोहा-यहि सुनि झख लागे बकन, क्रोध बहुत दुख पात॥
दास कहत हियसो मनहुँ, लगे चरनको घात॥
धर्म तपस्या दया धन, पुनि संयम अरु नेम॥
ज्ञान भक्ति वैराग बल, तजत शील रो प्रेम॥
मेरे तेज प्रतापते, ये सब जाहि पराय॥
धीरजहू धीरज तजै, मेरो दर्शन पाय॥
क्षमा कहै तुमहो बडे, गुनहु बडे तुम माहिं॥
जो कछु कहो सो सत्य है, यामैं संशय नाहिं॥
कृपा करी मोपर बडी, मैं मान्यो बड भागि॥
क्षमा दीन ह्वै क्रोध कै, तुरतै पायन लागि॥

क्षमाकी ऐसी अधीनताको देखकर क्रोधका तेज हत हो गया।

यह सुनि क्रोध शीतलगत अति कुंठित भयो॥
हारचो कर अतिदाप सबै जडता गयो॥

टीका-क्षमाकी अमृत समान अधीनताकी वाणीको सुनकर क्रोधका सब तेज जाता रहा, अब वह शांत और कुंठित होकर आगे युद्ध करनेसे रुक गया और अपने हथियार डाल दिये।

दोहा-कियो अनादर क्षमाको, शीतल भयो न रोष॥
तबै क्षमा पायन परी, सबै हमारो दोष॥
तुम विन दूजो को अहै, परम सीखकी बात॥
सबै चूक मोसे परी, क्षमा कीजिये तात॥
गये क्रोधके प्राण तब, शीतल भयो शरीर॥
जीति क्षमा प्रिय ढिग गयी, मिटी सुतनकी पीर॥
जैसे चण्डी मारेउ, महिषासुर विकाल॥
तैसे क्षमा विनाशेऊ, क्रोधहि हियेको शाल॥

क्रोधके मरतेही दूतोंने मोहराजाको जाकर अपने पराजयका समाचार सुनाया।

काम क्रोध सुभटै युग पराजय पायऊ॥
महा मोह अति संकेऊ दास बुलायऊ॥

टीका-काम और क्रोध दोनों महावीरकी जब पराजय होगयी तब मोह राजा अति भयभीत होकर अपने सर्व सेनाको बुलाकर एकदमसेही विवेककी सेनासे युद्ध करनेको रणमें आया। तब-

तब विवेक निजदल कहँ आयसु दीन्हेऊ॥
निज निज जोरी जान निपातन कीन्हेऊ॥

टीका-जब मोहराजाने एकदमसे अपनी समग्र सेना सहित विवेककी सेना पर चढायी की, तब इधरसे विवेक राजाने भी अपनी समग्र सेनाको शत्रुसे युद्ध करनेकी आज्ञा देदी। अब क्या था, घमासान युद्ध आरंभ हुआ। अपने २ जोडके योद्धाओंको ढूँढ २ कर सब परस्पर युद्ध करने लगे। तहाँ-

बुद्धि कुबुद्धिहिं मार्‍यो धर्म अधर्मता ॥
तृष्णा हतेउ संतोष सो कर्म अकर्ममता ॥
चंचल तेहि थिर मारेउ पुण्य जो कुकर्मा ॥
दुविधहिं एकता घातेउ लिपट सूक्ष्मश्रमा ॥

टीका-बुद्धिने कुबुद्धिको मारा, धर्मने अधर्मको तारा, तृष्णाको संतोषने उजारा और कर्मने अकर्मका नाश मारा। स्थिरताने चंचलताको लुप्त किया तो पुण्यने पापको गुप्त किया। द्वैतभावको अद्वैतने तो सहजमें ही नाश कर दिया। इसी प्रकारसे मोह राजाकी समस्त सेनाका सत्यानाश होगया ॥

छन्द-श्रम ही नमार्‍योरिपुसँहार्‍योमोह दुंदुभी बाजई॥
प्रवृत्ति पुत्र पौत्र सबगत अम्बिका सुनि लाजई ॥

टीका-हे धर्मदास! विवेकराजा तो इस प्रकारसे शत्रुको नाश करके निश्चित होकर बैठे; आनन्दरूपी दुन्दुभी बजने लगी किन्तु जब प्रवृत्तिने अपने वंशका नाश सुना तब अत्यन्त लज्जित होकर पश्चाताप करने लगी फिर-

आदि आशा सखी मिलि प्रवृत्ति आगे आयऊ ॥
मन राजा पत्नी सुनत क्षय शोक विपति विरागेऊ॥

टीका-हे धर्मदास! प्रवृत्तिके सर्व पुत्र पौत्र कलत्रका नाश होगया तब वह अत्यन्त शोक और पश्चाताप करती हुई आदि

आशाको साथ लेकर मनराजा के समीप पहुँची (आदि आशा प्रवृत्तिकी सखी है क्यों कि, जब यह जीत अपने स्वरूपकी आदि अवस्थाका वर्णन शास्त्रोंमें सुनता है तब उस आदि सुखकी प्राप्ति के लिये प्रवृत्तिमें फँसता है। यद्यपि आदि आशा प्रथम उत्पन्न होती है तथापि प्रवृत्ति अधिक बलवती होनेके कारणसे उससे प्रधान होजाती है)

इस प्रकार प्रवृत्ति जब मनके निकट गयी तब मनराजा अपनी प्यारी स्त्री प्रवृत्तिके परिवारको नाशको सुनकर अत्यन्त कष्ट और शोक तथा विपत्तिको प्राप्त हुआ। पश्चात् उसे विराग आया ॥

(जब जीव किसी पदार्थ को अत्यन्त स्नेह पूर्वक ग्रहण करता है तब अपने स्वरूपको भूलकर उसी पदार्थमें तदाकार हो जाता है किन्तु जब उस पदार्थसे वियोग होजाता है; अथवा उसमें किसी प्रकारसे कुछ हानि होती है तब उसके चित्त को बहुत कष्ट, अनुताप और दुःख होता है, फिर थोडी देरमेंही चित्तमें स्थिरता आनेसे चित्तको शान्ति आजाती है और उससे विराग हो जाता है) ॥ अब मन राजा प्रवृत्ति से पूछता है ॥

हे बाला अर्द्धंगी कीतहि सिधायऊ ॥
सुहाय तुव सुत सतत किहि विधि मारेऊ॥

टीका—हे मेरी स्त्री प्रवृत्ति! तू इस समय कहाँ आयी है। तेरे परम सुन्दर पुत्रोंको किसने किस प्रकारसे मारा ॥

उधर तो प्रवृत्ति मनराजाके पासपहुँची है इधर अब निवृत्ति ने देखा कि, अब समय आया है मनराजा को अपने वश करना चाहिये इसलिये उसने अपने सखियोंको सिखाकर मनराजाके पास भेजा ॥

निवृत्ति निज सखियन तुरत सिखायऊ ॥
पति समीप तुम गौनो बात बुझायऊ ॥

टीका-मन राजाको विराग संयुक्त देखकर निवृत्तिने अपनी सखियोंको बुलाकर और उन्हें कुछ गुप्त शिक्षा देकर मन राजाके पास भेजा। तब-

विद्या विनय अधीन सखी तुरते गयी ॥
करिप्रणाम कर जोरि मानु बोलत भयी ॥

टीका-निवृत्तिकी आज्ञा पाकर विद्या और अधीनता तीनों सखी मन राजाके पास जाकर प्रणाम करके विनयपूर्वक बोलने लगीं। क्या बोलने लगीं कि हे प्रभु-

कितहिं उदास समुझि जिय देखिये ॥
एक वनितासंगभोग अब द्वितीय लेखिये॥

टीका-निवृत्तिकी सखियोंने राजा मनसे कहा हे महाराज अब आप किस बातकी चिंता कर रहें हैं। अबतक एक स्त्रीके साथ समागम करके आनन्द विलास प्राप्त किया और उसका परिणाम भी देख लिया अब दूसरीकी ओर दृष्टि कीजिये और उसके आनन्द विलास और उसके परिणामको देखिये॥

निवृत्तिकी सखियोंके वचनको सुनकर प्रवृत्तिकी सखी आशा (जो प्रथमसेही वहाँ बैठी हुई थी) को अच्छा न लगा।

सुनत वचन रिसवश भयी आशा यों कही ॥
विद्या द्रोह दुराचारिणी कितहु न चूकही ॥
सुहावति सौत समाजहि सबहि मरावसी ॥
कहि कहि पाठ कुपाठ विवेक पठावसी ॥

टीका-विद्याकी बातको सुनकर क्रोधित हुई आशा कहने

लगी—हे विद्रोहिणी! दुराचारिणी विद्या! तू कहीं भी चूकती नहीं है। प्रवृत्ति जो सौत निवृत्ति है उसके समाजमें सदा वास करके उसके पुत्र विवेकको पाठ कुपाठ अर्थात् सत्य झूठकी बात कह कहकर उसे बहकाती है और प्रवृत्तिके वंशका नाश भी तूने ही कराया है।

जो वांछित सा कीनो अब कित भावसी ॥
जरे पर तैं माहुर भले लगावसी ॥

टीका—हे विद्या! जो तेरे मनमें था सो तूने कर लिया अब क्या करना चाहती है कि जलेपर जहर लगाने आयी है आशाकी ऐसी दुष्ट वाणीको सुनकर विद्याने उसकी उपेक्षा की और मनराजासे कहने लगी।

स्वामी चित धीरज धारि नीति विचारिये ॥
उभय नारि प्रतिपालक कितहिं विसरिये ॥

टीका—विद्याने कहा हे महाराज मन! आप नीतिपूर्वक विचार करके देखिये कि आप अपनी दोनों स्त्रियोंके पालन पोषण करनेवाले हैं। सो आप इस धर्मको कहाँ भूल गये हैं। आप अबतक प्रवृत्तिमें सम्पूर्ण लिप्त होरहे हैं और निवृत्तिको एकदम भुला दिया है उसकी ओर भी दृष्टि उठाकर देखिये। इस प्रकारसे मनराजासे कहकर विद्या आशाकी ओर फिरी और उसको डांटा—

भाग भाग दूती भामिनी नित्य इच्छा चहै ॥
प्रवृत्ति है भारी देह अजहुँ चिंता गहै ॥

टीका—विद्या कहती है। हे दूती! आशा! यहांसे भाग जा यहांसे भाग जा। देखती है कि, मनराजाके साथ प्रवृत्ति शरीर रूप होकर साक्षात् इतने बडे स्वरूपसे विराज रही है तथापि उसको फिरसे और भी बडा बनानेके लिये चिंता कर रही है।

यहाँ भाग, भाग दोबार कहनेसे आशय यह है कि निवृत्ति परायण पुरुषोंको लौकिक पारलौकिक दोनों प्रकारकी आशा त्यागनी चाहिये और यही वैराग्यका स्वरूप है । आशाको इस प्रकार से दुतकार विद्या फिर मन राजासे कहने लगी ॥

छन्द—गहि निवृत्ति स्नेह कीजे सुनहु स्वामी नागरा ॥
विषय शोचहि कहा कीजे करहु राज उजागरा ॥

टीका—विद्याने कहा हे बुद्धिमान स्वामिनअब आप निवृत्ति को ग्रहण करके उसके साथ प्रेमपूर्व राज्य कीजिये ॥

मन राजा सुनि हर्षेऊ निवृत्ति संगम आयऊ ॥
पति परी आनन्द भारी सुफल जीवन पायऊ ॥

टीका—विद्याके शिक्षाप्रद वचनोंको सुनकर मनराजा मनमे बहुत प्रसन्न हुआ और विद्याके साथही निवृत्तिके समीप गया हे धर्मदास ! उस समय निवृत्तिके आनन्दका क्या पार हो ? निवृत्ति अपने पतिको अपने ऊपर कृपा करनेके लिये निकट प्राप्त हुआ देखकर अपनी जीवनकी साफल्यताको प्राप्त जानकर पतिके चरणपर पड़ गयी ॥

अब दोनों आनन्दपूर्वक आनन्द विलासमें मग्न हुए ॥

इस प्रकारसे हे धर्मदास! जब यह मन प्रवृत्तिसे अलग होकर निवृत्तिको प्राप्त होकर गुरुमुखद्वारा सच्चे पारख पदको प्राप्त होता है तब मन स्थिर होकर सुखकी प्राप्ति होती है ॥

इति श्रीहंसमुक्तावली अर्न्तगत मोह और विवेकका युद्ध कबीरपंथी भारत-पथिककृतटीका सहित समाप्त

इति विवेकसागर समाप्त